पथ-प्रदीप

ओ३म्

पथ-प्रदीप

ऋषि दयानन्द और आर्य आदर्श के विषय में कतिपय विचार ।

श्रीयुत टी० एल० वास्वानी लिखित

Torch-Bearer

का

हिन्दी अनुवाद

अनुवादकः-

प० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०,

प्रोफेसर मेरठ कालेज ।

•✱•

श्रीमद्दयानन्दाब्द १००

श्री वैक्रमाब्द संवत् १९८१

मूल्य ॥) सादा   मूल्य १) सजिल्द

पथ-प्रदीप
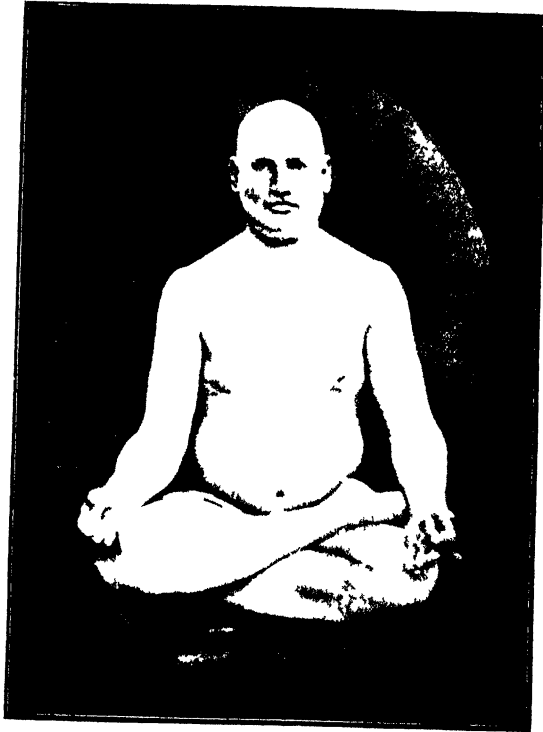
महर्षि दयानन्द

अपने पूज्य पिता जी को—

सादर समर्पण

जिन से मैंने यह प्राचीन सत्य सीखा कि:--

जीवन का सौंदर्य तपस्या से खिलता है

जैसे कि फूल वसन्त में खिलते हैं.

टी० एल० वास्वानी

अनुवाद समर्पण।

मूल लेखक—

श्रीयुत टी० एल० वास्वानी

के

करकमलों में

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'

--गीता

धर्मेन्द्रनाथ

विषय-सूची

हमारी प्राचीन माता

माता: !

अपने पुत्रों की पुकार सुनो और आओ !

तुम सोयी नहीं हो और तुमने इस देश को छोड़ा नहीं है;

यह देश, ऋषियों का मन्दिर और युगों का शैशव में पालक;

तुमने छोड़ा नहीं है, केवल तुमने अपने को छिपा लिया है.

अब आओ हे माता आओ ! फिर सब शक्तियें—

जो हमारे विरुद्ध खड़ी हैं, भय से कांपने लगेंगी,

और घृणा तथा द्वेष मिट जांयेगे !

पर यदि तुम न आओगी, वे और भी बढ़ेंगे !

और हमारी दासता बनी रहेगी, उठो और आशीष दो—

हमारे उद्देश्य को । तथा टूटते जीवन को संभालो, जिससे भारत

फिर एक बार आशा का नक्षत्र बन सके—

उन जातियों के लिये जिन ने तूफ़ान में समुद्र यात्रा की है !

उठो ! तुम्हारी सन्तान पुकार रही है, उठो !

हमारी प्राचीन मात:, जातियों को वह सन्देश सुनाओ

जो युगों की चट्टानों पर लिखा गया है—वह, स्वाधीन भारत का

संसार के प्रति सन्देश !

टी० एल० वास्वानी,

भूमिका

दयानन्द शताब्दी के उपलक्ष्य में मेरे प्रिय मित्र प्रोफ़ेसर धर्मेन्द्रनाथ एम० ए० एम्० आर० ए० एस० (शताब्दी कमेटी के प्रचार विभाग के मन्त्री) तथा पण्डित भगतराम ऋषि (स्थानिक आर्य्यसमाज के एक नेता) ने आग्रह किया कि मैं स्वामी जी के विषय में अपने विचार प्रकाशित करूं। मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की। मुझ में अपेक्षित योग्यता नहीं। मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं और न मैं आर्य्यसमाज का सभासद् हूं। मेरा घर भी '*घर रहित होने की जगह में*' है। परन्तु मेरे मित्रों ने मेरे निषेध करने पर भी न माना, अन्तत: उनका आग्रह सफल हुआ। मैं इस छोटी पुस्तक को प्रकाशित करता हूं.

मैं पाठकों से नम्रतापूर्वक निवेदन कर देना चाहता हूं कि मेरी धर्मसम्बन्धी फ़िलासफ़ी '*धर्मैक्यवाद*'* (Theomonistic) है। मेरी *कृष्ण*, *क्राइस्ट* और *नानक* के लिये ऐसी प्रगाढ़ भक्ति है जो शब्दों में प्रकट नहीं की जा सकती। और मैं, कुछ अध्ययन तथा विचार के पश्चात्, *मुहम्मद* को भी ईश्वरीय दूत समझकर आदर की दृष्टि से देखने लगा हूं।

यह प्रकट कर देना आवश्यक है कि यह पुस्तक आर्यसमाज के विषय में नहीं है। मैं उस विषय में कुछ कहने की योग्यता

---

* इसका प्रयोजन यह है कि सब धर्मों के मूलसिद्धान्त परस्पर विरोधी नहीं प्रत्युत वे एक ही है, और इस प्रकार यथार्थ रूप में सब में धर्मों में एक ही धर्म है।

—अनुवादक

नहीं रखता, और न यह पुस्तक जीवनचरित है और न यह आलोचनात्मक अध्ययन पर निर्भर रहने का दावा करती है. जैसा कि पुस्तक के उपनाम से प्रकट है, मैंने *ऋषि दयानन्द* और *आर्य्य आदर्श* के विषय में केवल अपने विचारों को प्रकट करने का यत्न किया है। मैं आर्यसमाज के संस्थापक को जाति की बहुमूल्य सम्पत्ति समझता हूं। मैं दयानन्द के नाम को अर्वाचीन भारत के *अत्यन्त* गौरवपूर्ण नामों में आदर की दृष्टि से देखता हूं। अभी थोड़े ही दिन हुये मैंने आर्य्यसमाज के एक बड़े विद्वान् और अपने प्रिय मित्र को लिखा था:—

मेरी आशा जाति के युवकों में है। और मेरी कामना है कि तुम जो कि आर्यसमाज के युवक हो, आध्यात्मिक और राष्ट्रीय स्वाधीनता के सन्देश का आगे बढ़कर स्वागत करने के लिये *ईश्वर* से शक्ति और साहस प्राप्त कर सको! मुझे डर है कि बहुत से लोग पुरानी लकीर को ही पीट रहे हैं और ऋषि-दयानन्द का सन्देश अभीतक अप्रकट ही है। ऋषि इस या उस '*समाज*' के नहीं हैं वे सारी मनुष्य जाति के हैं। इस दयानन्द का—*अधिकतर महान् यथार्थ दयानन्द* का—मैं समझने का यत्न करता हूं।

ज्यों २ मैंने आर्य्य आदर्श का अध्ययन किया है, मैं इस महान् दयानन्द के अधिक और अधिक समीप आता गया हूं. मैं बड़े हर्ष से उस आदर्श के सौन्दर्य को चित्रित करना चहता हूं जिससे कि भारत के युवकों के हृदय में उन बातों की स्मृति हो सके जिनके कारण उस प्राचीन युग में भारत महान् बना था।

अपनी उच्चता से पतित निस्सन्देह आज भारतवर्ष है, परन्तु फिर भी भारत का भविष्य महान् है! जूडिया देश यद्यपि निर्बल

और पतित दशा में था फिर भी उसे ही एक महान् कार्य्य के लिये चुना गया। जूडिया से ही वह शक्ति और सन्देश फैला जिससे पश्चिम का पुनरुज्जीवन हुआ। भारत यद्यपि निर्बल और दासता में है, फिर भी भारत के सामने एक महान् उद्देश्य है, वह है—जातियों को उस सन्देश के सुनाने का जिससे सभ्यता का पुनर्निर्माण होगा। क्या जाति के युवक उस महान् भविष्य के लिये अपनी प्रेम पूर्ण सेवा अर्पण करेंगे? या वे अपने को तुच्छ और क्षणिक वस्तुओं के-जो आती हैं और चली जाती है—प्राप्त करने में नष्ट कर देंगे?

शताब्दी की दृष्टि से पुस्तक को बहुत शीघ्रता के साथ मुद्रित होना पड़ा है इस लिये मुझे दुःख से कहना पड़ता है कि बहुत से संस्कृत उद्धरण प्रेस की सुविधा के लिये उड़ा दिये गये है। मुझे आशा है कि वे अगले संस्करण में प्रकाशित हो सकेंगे। इस संस्करण में उनके अनुवाद से ही सन्तुष्ट होना पड़ा है बहुत सी दशाओं में आर्य हृदय के इन हृदयग्राही गहन गीतों का अनुवाद करना उन्हें बदल डालना है।

पुस्तक के सब अध्याय नवीन नहीं हैं किन्हीं २ अध्यायों में मेरे पुराने लेखों और व्याख्यानों को ही विस्तृत कर के उद्धृत किया गया है जो कि कराची के 'New Times' पत्र में प्रकाशित हो चुके है। इसके लिये मैं उस पत्र के सुयोग्य सम्पादक श्रीयुत टी० के० जैस्वानी एम्० ए० का धन्यवाद करता हूं जिन ने उन लेखों को इस पुस्तक में एकत्रित करने की अनुमति देदी।

मैं अपने कर्त्तव्य में त्रुटि करूंगा यदि मैं पण्डित भगतराम ऋषि के प्रति उनके सारे परिश्रम के लिये जो उन ने इस पुस्तक की तय्यारी में उठाया है, अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट न करूं। वे बतलाते हैं कि उनके पूर्वज 'अङ्गिरस' नामक ऋषि लोग थे

जिन्हों ने ग्रन्थों से पता चलता है, यज्ञ के द्वारा अमरत्व पाया था उन को निस्सन्देह ऋषि दयानन्द और उनकी संस्थापित आर्य-समाज के साहित्य के विषय में मेरी अपेक्षा अधिक परिचय है। मुझे यही दुःख है कि मैं उस सब सामग्री का जो सुयोग्य पण्डित जी ने कृपा पूर्वक मेरे आगे प्रस्तुत की, अधिक उपयोग नहीं कर सका। क्योंकि इस पुस्तक को बहुत ही थोड़े समय के भीतर तय्यार कर प्रेस में देने के लिये मुझे समय से संग्राम करना पड़ा है।

मुझे केवल इस आशा से हर्ष है कि मेरी यह पुस्तक एक बड़े ग्रन्थ की जिस का मैं विचार कर रहा हूं, भूमिका मात्र है।

अगले मास में दयानन्द शताब्दी मनाई जायगी और मैं इस पुस्तक को अर्वाचीन भारत के अत्यन्त विशुद्ध उच्चतम पुत्र की पवित्र स्मृति में अपने *'शताब्दी उपहार'* के रूप में प्रस्तुत करता हूं। मैं इसे एक 'धर्म के अविश्वासी' की श्रद्धा के साथ प्रस्तुत करत हूं, मैं इसे उस भावना के साथ प्रस्तुत करता हूं जो कि एक प्राचीन वैदिक मन्त्र से प्रकट हो रही है:—

श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित होती है।
श्रद्धा से ही आहुति दी जाती है॥

कराची,
जनवरी सन् १९२५,

टी० एल० वास्वानी

अनुवादक की भूमिका।

श्री वास्वानी जी के मैंने कभी दर्शन नहीं किये हैं और न आज तक उनका चित्र ही देखा है परन्तु उनके साथ जो मेरा आत्मिक सम्बन्ध है वह इतना गहरा है कि किन्हीं शब्दों में प्रकट नहीं हो सकता ! मैं इतना ही जानता हूं कि कई बार मेरे हृदय के सोते हुये तार उनके लेखों से जाग उठते हैं और उनका अन्तर्हित राग आलाप के रूप में फूट पड़ता है ! जिस भावना के, जिस कल्पनामय आदर्श के पीछे मैं दौड़ता हूं, जिसे मैं पकड़ नहीं पाता, जिसके पास जाते ही मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, मेरी शब्द माला, जिससे मैं उसे बांधना चाहता हूं, पिघल जाती है और मैं रीते हाथ लौट आता हूं, उसी का-उसी अनिर्वचनीय वस्तु का जिसे मैं शब्द में प्रकट नहीं कर सकता-सुन्दर हृदयङ्गम चित्र वास्वानी जी के समान चित्रकार द्वारा रचित देख कर मेरा हृदय मुग्ध मुग्ध रह जाता है ! तब मैं उनके प्रति उड़मते हुये श्रद्धा के प्रवाह में आप्लावित हो जाता हूं. कैसी प्रबल उत्कण्ठा मेरे हृदय में प्रज्वलित हो रही है कि एक सप्ताह के बाद शताब्दी के समय 'उसी' व्यक्ति के दर्शन होंगे !

वास्वानी जी की प्रतिभा में वह सौन्दर्य है जिस पर इस देश के ही नहीं प्रत्युत युरोप और अमरीका के भी कलाभिज्ञ मोहित हैं परन्तु बहुत कम को यह ज्ञात है कि उनके जीवन में सब से बड़ा सौन्दर्य 'तपस्या' का है। उनका ब्रह्मचर्य जीवन नवयुकों के लिये ज्वलन्त प्रोत्साहन है ! उनकी पारदर्शक आस्तिकता, सत्य और अकृत्रिम धर्मनिष्ठा उनकी लेखनी से लिखी प्रत्येक पंक्ति से झलक रही होती है !

संसार एक नये युग में पदार्पण करना चाहता है। उस नये युग के प्रभात का पक्षियों के समान कलरव के साथ स्वागत करने वाली आत्माओं मे से श्रीयुत वास्वानी जी भी हैं. उनकी लेखनी भारतको उस नये युग और नये आदर्श की ओर प्रेरित कर रही है ! उनके लेखों मे शक्ति और उत्तजना का विद्युत् भरा हुआ है !

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उनकी इस पुस्तक के द्वारा जिसे उन ने 'शताब्दी उपहार' के रूप मे ऋषि दयानन्द की पवित्र स्मृति में अर्पण किया है, भगवान् दयानन्द के प्रति उन लोगों की भी, जिन तक आर्य्यसमाज की पुकार नहीं पहुंच सकी है, श्रद्धा और भक्ति का विस्तार होगा। निस्सन्देह आर्य्य-समाज के साहित्य में यह गौरव पूर्ण वृद्धि है। आशा की जाती है कि इस पुस्तक का अनुवाद वास्वानी जी की दूसरी पुस्तकों के समान जर्मन फ्रेञ्च आदि विदेशी भाषाओं में भी होगा। वास्वानी जी का यह उपहार मेरी सम्मति में शताब्दी का सब से बहुमूल्य उपहार है ! यह उनके हृदय के प्रेम और श्रद्धा की पुष्पाञ्जलि है।

अधिकांश आर्य भाई अंग्रेज़ी से अनभिज्ञ हैं। इस लिये इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद होना आवश्यक ही था। पूज्य वास्वानी जी की भी प्रेरणा थी कि अनुवाद शताब्दी से पूर्व छप जाना चाहिये। हमारी इच्छा थी कि यह अनुवाद अधिक सुन्दर रूप में प्रकाशित होता परन्तु जिन कठिनताओं और जैसी शीघ्रता में यह अनुवाद किया गया है उस पर ध्यान देने से पाठक, विश्वास है कि, किसी त्रुटि के लिये भी हमें उलाहना न देंगे। अभी कराची में पुस्तक प्रेस में दी गई थी. जो २ फ़ार्म वहां छपते थे वे मेरठ आते गये। उनसे अनुवाद हुआ और साथ २ छपता भी गया। अनुवाद और छपा सब दस दिन के

भीतर हुई है! निद्रा रहित रातें बिताकर ही पुस्तक का अनुवाद पूरा किया जा सका है। पूज्य वास्वानी ने अनेक विघ्न बाधाओं के होते हुये भी इतने थोड़े समय में पुस्तक तयार की थी, ऐसी दशा में मेरी यह प्रवल कामना थी कि शताब्दी के पूर्व पुस्तक निकालने के सम्बन्ध में उनकी आज्ञा का भी पालन हो जावे। मुझे यही हर्ष है कि जिस रूप में भी सही, शताब्दी के पूर्व यह अनुवाद प्रकाशित हो गया।

अनुवाद आर्य जनता के कर कमलों में अर्पित है आशा है कि वह इससे लाभ उठायेगी।

मेरठ कालेज,
६--२--२५ ई०

धर्मेन्द्रनाथ

उपोद्घात

नाथ हमारे परिश्रम का फल तुम्हें अर्पण है, हमें नव-जीवन दो! हमारे बीच उन ऋषियों को जन्म दो जो हमें विद्यारूपी धन से सम्पन्न कर सकें। वेद.

I क्यों ?

मैं विधर्मी हूं परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि मैं दयानन्द की ओर आकर्षित हो रहा हूं. क्यों ?

मैं आर्यसमाज का सभासद् नहीं पर दयानन्द का नाम मुझे प्रफुल्ल कर देता है! क्यों ?

ऋषिके प्रति और मेरी अपनी आत्माके प्रति यह अनुचित होगा यदि मैं अपने कई मत-भेदों को स्वीकार न करूं जो कि दार्शनिक, धर्मसिद्धान्तसम्बन्धी और ऐतिहासिक विषयों में हैं। कृष्ण, भक्तिवाद, क्राइस्ट, सेमेटिक मत* सिक्खधर्म

---

*सेमेटिक मत से तात्पर्य यहूदीमत, ईसाईमत, और इस्लाम तीनों से है, क्योंकि इन मतों का मूल यहूदी मत से है जो कि सेमेटिक जाति में उत्पन्नहुआ. अनुवादक

और सिक्ख गुरुओं के विषय में मेरे विचार ऋषि दयानन्द के विचारों से भिन्न हैं। उनकी वेदार्थशैली मुझे सायणाचार्य की अपेक्षा, जिस ने वेद के धर्म को कर्मकाण्ड के साथ मिला दिया है, अधिक अपील करती है परन्तु ऋषि दयानन्द की भाषा और 'धर्मसिद्धान्त', (Linguistic-theological method) पर निर्भर भाष्यप्रणाली के साथ, मैं नम्रता पूर्वक कहूंगा कि 'आलोचनात्मक वैज्ञानिक ऐतिहासिक प्रणाली' (Critico-scientific-historical) को जोड़ देना चाहिये। मेरा विश्वास है कि आर्यों के धर्मों का तुलनात्मक इतिहास वैदिक विज्ञान की छिपी ज्योति को और भी अधिक चमकायेगा। ऋषि दयानन्द के नियोग सम्बन्धी विचारों से मैं सहमत नहीं-वे मुझे प्लेटो के स्त्रीपुरुषसम्बन्ध विषयक विचारों को याद दिलाते हैं। तथापि मैं इस **बालब्रह्मचारी** के सौन्दर्य पर मोहित हूं। क्यों ?

वर्षों के अनुभव ने मेरी श्रद्धा को कम नहीं किया किन्तु और भी गहरा कर दिया है. क्यों ?

एक जाति की सब से बड़ी सम्पत्ति क्या है ? उस के अग्रेसर नेता और भविष्यद्रष्टा। उन में से एक स्वामी दयानन्द थे। उनका मानव चरित्र ऐसा है जिस पर कोई जाति या कोई भी युग अभिमान कर सकता है। उनकी सत्यनिष्ठा को देखो ! उन्हें इस बात का डर नहीं कि वे स्थिर विचार वाले न समझे जायेंगे। एमर्सन कहता है कि स्थिर विचार रखना जिसे, स्थिरता, (Consistency) समझा जाता है, मन्द-बुद्धि वालों का 'हौआ' है। दयानन्द

सत्य की पूजा करता है जैसा कि वह उसे प्रकट होता है। वह शैवमत को वेदान्त के पक्ष में छोड़ देते हैं* और फिर वेदान्त के पक्ष को सांख्य और योग के अनुसार वेदसिद्धान्त के पक्ष में छोड़ देते हैं उन्हें विचार परिवर्तन करने का भय नहीं। उन्हें 'प्रकाश' के पीछे जाना है, जिधर भी वह ले जावे। एक भक्त कहता है, 'महाराज गुरुमन्त्र दीजिये', वे उत्तर देते हैं, 'क्या मैंने पहिले ही तुम्हें गुरुमन्त्र नहीं दे दिया? यही मेरा गुरु मन्त्र है कि 'जिसे तुम सत्य समझते हो उस में विश्वास रक्खो और असत्य को छोड़ दो' क्या सत्य की ओर सङ्केत करने से बढ़ कर कोई धर्म हो सकता है? इस सत्य वक्ता को राजाओं का डर नहीं। एक उच्च अधिकारी ने दयानन्दसे कहा, मूर्त्तिपूजाका खण्डन मत करो, महाराज काश्मोर प्रसन्न हो जायेंगे, वे। भर्तृहरि के एक उचित श्लोक में उत्तर देते हैं—

बुद्धिमान् न्याय के मार्ग से नहीं हटते। उन्हें प्रशंसा और निन्दा की परवाह नहीं—न धन की और न दरिद्रता

* ऋषि की जीवनी में आया है कि स्वामी जी महाराज पहले जब जयपुर गये तब उन की शैवमत की ओर प्रवृत्ति थी फिर वेदान्तकी ओर झुके। अन्ततः उन्होंने सब सम्प्रदायों को छोड़ वेद का आश्रय लिया। द्वैतपक्ष के कारण ऋषि के वेदवाद को सांख्य योग के अनुसारकहा गयाहै। अनुवादक

को . चाहे वे एक वर्ष में मर जावें, चाहे युगपर्यन्त जियें,* एक उच्च अधिकारी उन से कहता है:—

'मूर्त्ति पूजाके विरोध को छोड़ कर और जो कुछ आप उपदेश देतेहैं सब ठीकहै . बस इस अंशको छोड़ दीजिये फिर सब आपके अनुयायी हो जायेंगे' ऋषि दयानन्द उत्तर देते हैं 'मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता', वे अपने आत्मचरित में लिखते हैं-'मेरे जीवनका उद्देश्य मन वचन और कर्मसे सत्यका अनुष्ठान करना है' सत्य ! चाहे उससे मृत्यु भी हो जावे, दयानन्द के जीवन की सब से बड़ी आकाङ्क्षा थी। सत्य के लिये वह १५ वर्ष तक, और इस से भी अधिक, पर्वतों और मैदानों में घूमता है ! साधु और सन्यासियों की खोज करता है, और ३६ वर्ष की आयु में स्वामी विरजानन्द के चरणों में बैठ कर पवित्र प्राचीन ब्रह्मचर्य के नियमानुसार उनकी सेवा करता हुआ उनका शिष्य बनता है !

कुछ लोग ऋषि पर दोष लगाते है कि उसने कट्टर हिन्दू सिद्धान्तों का तीव्र विरोध किया . वे भूल जाते हैं कि यह सत्यके लिसे प्रेम था जिसने उसे तीव्र बना दिया ।'निटशे' ने कहा है कि सारे निर्माता (नये युग के बनाने वाले) कठोर होते हैं उन का कठोर होना आवश्यक है' ऋषि ने हिन्दू-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

समाज पर ज़ोर से चोट पहुंचाई जिस से कि वह जाति की सेवा के लिये नये सिरे से योग्य बन सके. उन्होंने हिन्दुओं पर चोट लगाई जिस से कि वे मनुष्य जाति की सेवा के लिये अधिक मज़बूत बन जावें। और ऋषि दूसरों पर उस से आधे भी कठोर न थे जितने कि स्वयं अपने ऊपर।

कुछ लोग उन्हें यह दोष देते हैं कि उन ने 'मैडम ब्लैवट्स्की' कर्नल आलकाट और थियासोफ़िकल सोसाइटी के दूसरे लोगों का साथ छोड़ दिया। परन्तु मेरे विचार में उन का पृथक् होना अनिवार्य था। ऋषि दयानन्द का पुरुष रूप ईश्वर* (Personal God) में गहरा विश्वास था, अनन्त सच्चिदानन्द की, नित्य स्वयंचेतनरूप आत्मा की पूजा करना दयानन्द का दृढ़ सिद्धान्त था, उनके दार्शनिक विचार भी थियासोफ़ी से भिन्न थे। उदाहरण के लिये वे मैडम-ब्लैवट्स्की के पुनर्जन्मसम्बन्धी विचारों से जो कि उनकी पुस्तक 'Isis unveiled'—में निम्न प्रकार से दिये गये हैं, कदापि सहमत नहीं हो सकते थे. वे उस में लिखती हैं:—

> "अब हम इस रहस्यपूर्ण पुनर्जन्म के सिद्धान्त की कुछ बातें प्रस्तुत करते हैं अर्थात् एक व्यक्ति का या यों कहना चाहिये कि उसके अध्यात्म सरल तत्त्व

---

* ईश्वर में विश्वास रखने वाले आस्तिकों में दो भेद हैं। एक दार्शनिक दृष्टि से शक्तिरूप तत्व ईश्वर को मानते हैं, परन्तु अन्य ईश्वर में कोई धर्म नहीं मानते; किन्तु दूसरे लोग पुरुषरूप ईश्वर (Personal God) में विश्वास रखते हैं. अनुवादक.

(Artral monad) का एक ही लोक में दो बार आना प्रकृति का साधारण नियम नहीं, किन्तु यह एक अपवाद है. यदि बुद्धि का इतना विकाश हो चुका है कि वह कार्यशील और विवेकयुक्त हो तो इस पृथ्वी पर पुनर्जन्म बिलकुल नहीं होता, क्योंकि त्रिगुण मनुष्य के तीनों अंश मिल चुके हैं और मनुष्य मानववंश को स्वयं चला सकताहै। परन्तु उस दशामें जब कि एक नई व्यक्ति प्रारम्भिक सरलतत्त्व का दशा से आगे नहीं निकली है अथवा जहाँ, जैसे कि एक मूर्ख के विषय में, त्रिगुणता पूरी नहीं हुई है; अमर चेतनता की चिनगारी को (Immortal Spark) जो कि इस व्यक्तितत्व में प्रकाश डालने वाली है, फिर पृथ्वीतल पर अवतीर्ण होना पड़ता है क्योंकि वह अपने प्रथम प्रयत्न में निष्फल हुई" *

ऋषि सम्पूर्ण हृदय से एकता चाहते थे, वे कहते हैं कि "मुझे मतों के पारस्परिक झगड़ों से घृणा है क्योंकि उन के कारण वे अपने द्वेषपूर्ण भावों और भद्दे विचारों को धर्म के नाम पर प्रकट करते हैं" दयानन्द ने कहा कि 'बुराइयों का नाश करना मेरे जीवन का उद्देश्य है' परन्तु

---

* लेखक ने मैडम ब्लैवटस्की की जिस थ्योरी को यहां उद्धृत किया है वह बहुत ही गूढ़ और रहस्यमय भाषा में है, जिन्होंने उस पुस्तक को पढ़ा है वे ही इस थ्योरी को समझ सकते हैं पर यह स्पष्ट है कि यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त वैदिक पुनर्जन्मवाद से बहुत भिन्नहै . अनुवादक .

वह असत्य के साथ मेल करके बाहरी एकता को मोल लेने के लिये तैयार न थे, उनका 'कामचलाऊ' एकता स्थापित करने में विश्वास न था.

फिर इस प्रश्न के उत्तर में कि मैं क्यों दयानन्द की ओर आकर्षित हो रहा हूं, मैं सब से प्रथम उन की 'यथार्थता के लिये प्रेम' और सत्य के प्रति निष्ठा की ओर संकेत करना चाहता हूं, इस पुरुष का प्रत्येक इंच सचाई से भरपूर है! यहां तक कि जब वे अपनी कीर्ति की पराकाष्ठा को पहुंच गये तो भी उन्होंने कभी अपने में अमानुषिक शक्ति होने का दावा नहीं किया, उन्होंने किसी गद्दी की स्थापना नहीं की. उन्होंने अपना पूर्वनाम और जन्मस्थान बतलानेसे इन्कार किया कि कहीं उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके किसी सम्बन्धी को उनका उत्तराधिकारी न बना दिया जाय. उन्होंने अपने समाज का अनियन्त्रित शासक होना स्वीकार नहीं किया, वे सचमुच उसे प्रजातन्त्र बनाना चाहते थे. उन्होंने उपदेशक होने के सिवाय कोई उपाधि स्वीकार नहीं की, उन के कुछ भक्त आर्यसमाज के कुछ मेम्बरों से परामर्श करके उन के पास जाकर प्रार्थना करते हैं कि वे समाज के 'संरक्षक' की उपाधि को स्वीकार करें. ऋषि दयानन्द इस प्रस्ताव पर हंसते हुये कहते हैं 'आपके प्रस्ताव में 'गुरुडम' की गंध आती है जिसके नाश के लिये मैं उत्पन्न हुआ हूं' मैं स्वयं गुरु बन कर एक नया सम्प्रदाय खड़ा नहीं करना चाहता। इस पर मुझे कनफ्यूशियस के शब्द याद आते हैं जो कि प्राचीन लोगों में विश्वास और प्रेम रखता हुआ अपने को केवल

'उसका संदेशवाहक न कि पैगम्बर' बतलाता है। वे लोग दयानन्द को 'परमसहायक' का पद देने का प्रस्ताव करते हैं, ऋषि दयानन्द हंसकर पूछते हैं कि 'यदि तुम मुझे परम सहायक का पद देते हो तो उस ईश्वर को क्या पद दोगे. फिर वे उनसे कहते हैं कि 'यदि चाहो तो मुझे साधारण मेम्बरों में लिख लो, मैं तुम में से एक हूं'।

वे अपने सिद्धान्तोंके भ्रांतिरहित होनेका दावा नहीं करते. वे अपने अनुयाइयों को बार २ कहते हैं कि 'सत्य की खोज करो और सत्य के पीछे चलो'. वे अपनी स्वलिखित जीवनी, आत्मचरित में सत्य को छिपाते नहीं. वे अपने अपराधों को स्वीकार करते हैं. वे उस कथा का वर्णन करते हुए कि वे किस प्रकार विवाह से बचने के लिये घर से भागे और फिर कुछ समय पश्चात् उनके पिता ने उन्हें पकड़ लिया और कुल को कलङ्कित करने वाला कह कर धमकाया, स्वीकार करते हैं कि क्रोध से भरे पिता को देख कर वे भयभीत हो गये और उन्होंने कहा जोकि सत्य न था, कि 'पिताजी मैं स्वयं घर लौटना चाहता था' वे लौटना नहीं चाहते थे, वे फिर भाग गये और अपने को एक बड़े वृक्ष की छायादार शाखाओं में छिपा लिया कि जिस से वे फिर न पकड़े जासकें और विवाह न हो सके, क्योंकि उनका आन्तरिक निश्चय आजन्म ब्रह्मचारी रहने का था. वे अपने आत्मचरित में एक मन्दिर में रहने को ज़िक्र करते हुये लिखते हैं कि यहां मुझे एक बुरी आदत पड़ गई, मैं भंङ्ग पीने लगा और कभी २ उसके नशे में बेसुध हो जाता था. दयानन्द सत्य पर मरते थे वे उसे दबा नहीं

सकते थे। एक दिन वे हुक्का पीरहे थे. लाला जीवनदास से जो कि वहां उपस्थित थे कहते हैं:—'मैं हुक्का छोडना चाहता हूं, मुझे दुःख है कि मैंने अभी तक नहीं छोड़ा—मैं इसी क्षण से छोड़ता हूं' उसके पश्चात् उन्होंने कभी हुक्का नहीं पिया।

यह पुरुष—दयानन्द अद्भुतरूप से सत्य है, इसलिये मैं उसकी ओर आकर्षित होता हूं' यह दयानन्द अपनी जाति को प्रोत्साहन देने वाला राष्ट्रनिर्माता और आर्य आदर्श का प्रचारक था, इसलिये मैं कहता हूं-**दयानन्द** को मेरा प्रणाम!

यह दयानन्द शक्तिशाली' तपस्वी और बालब्रह्मचारी था इस लिये मैं प्रेमपूर्ण श्रद्धा के साथ उस के आगे सिर झुकाता हूं।

दयानन्द की शास्त्रार्थ की शक्ति बहुत बड़ी थी परन्तु वह उसकी आत्मिक शक्ति और तपस्या की तुलना में कुछ नहीं है. इस दृष्टिसे मैं दयानन्द को **अरिस्टाटल** (अरस्तू) या **टालस्टाय** से भी, जिन पर संसार को उचित रीति से अभिमान है—महान् मानता हूं, अरिस्टाटल एक ज़बरदस्त विचारक था परन्तु उसने अपने हृदयका संयम नहीं कियाथा. वह दयानन्द के समान अथवा भारत के महर्षियों के समान तपस्वी न था. जब मैं टालस्टाय की प्रतिभा की गम्भीरता को देखता हूं तो प्रशंसा के भावों में डूब जाता हूं परन्तु सुधारक टालस्टाय और व्यक्तिरूप टालस्टाय में कितना भेद है! कितना अच्छा होता कि रूस का यह पैग़म्बर अपने जीवन में उन बातों को अधिक चरितार्थ करता जिनका उसने

इतनी सुन्दरता और सच्चाईसे उपदेश कियाहै . टालसटाय एक कलाभिज्ञ (artist.) के रूप में दयानन्द से बढ़ कर है परन्तु आत्मिकशक्ति और तपस्यामें दयानन्द से हीन है। मैं स्वामी मङ्गलानन्द पुरी का निम्नलिखित घटना की रिपोर्ट भेजने के लिये ऋणी हूं, जो उनके पिता ने जो आर्यसामाजिक नहीं थे, वर्णन की थी। स्वामी मङ्गलानन्द पुरी अपने पिताकी गङ्गाके किनारे दयानन्द से भेंट होने का उल्लेख करते हुये मुझे लिखते हैं:—

मेरे पिता ने कहा—मैंने तथा तीन मेरे साथियों ने रात्रि के समय दयानन्द के पास जाने का निश्चय किया। हम लोग रात के १२ बजे के करीब गङ्गा के किनारे पहुंचे, हमने गंगा के किनारे दयानन्द को जागते हुये पाया. उन्होंने केवल एक जांघ ढांकने का अंगोछा बांध रक्खा था, इस तीव्र सरदी में भी उनके ऊपर कोई कम्बल न था, वे रेत के विस्तर पर लेटे हुये थे, जब हम पहुंचे तो उठ बैठे, हम ने उन से कहा 'स्वामी जी, बहुत सरदी पड़ रही है, यह क्या बात है कि आप को नहीं लगती'? उन्हों ने उत्तर दिया कि 'आपके चेहरेको सरदी क्यों नहीं लगती? सदा खुला रहने से सरदी को सहना और उसे अनुभव न करना उसके लिये स्वाभाविक हो गयाहै, ठीक इसी प्रकार मेरे शरीर के लिये सरदी को सहना और उसे अनुभव

न करना स्वाभाविक हो गया है *

दयानन्द ने अपनेको 'दृढ़ता' के विद्यालयमें शिक्षित किया था, सादगी में ही उसकी महत्ता थी, और तपस्या में उनकी शक्ति थी. वह अपनी जाति सेवा के लिये फ़कीर हो गया, इसी लिये उसका कार्य धन्य है और नाम स्थिर है. जब मैं ऋषि के जीवन की अनेक घटनाओं को पढ़ता हूं, जो कि ब्रह्मचर्य के कारण सुन्दर और आत्मसमर्पण से प्रकाशमान हो रही हैं, तो मुझे चीन के महापुरुष लोट्ज़े (Laotze) के निम्न शब्द याद आते हैं:—

'आकाश स्थिर है और पृथिवी ध्रुव है। क्यों आकाश और पृथिवी स्थिर तथा ध्रुव हैं? कारण कि वे अपने लिये नहीं जीते, इसी कारण से वे अविचल हैं'

'इसी लिये सच्चा मनुष्य अपने व्यक्तित्व को पीछे रखता है परन्तु उसका व्यक्तित्व सामने आ जाता है, वह अपने शरीरको अर्पण कर देता है परन्तु उसका शरीर सुरक्षित रहताहै, क्यायह इसी लिये नहीं है कि वह अपने स्वार्थ के पीछे नहीं चलता, और इसी कारण वह अपने स्वार्थ को पूरा करता है'

---

* पता नहीं कि श्री मङ्गलानन्द पुरी जी के पिता का यह किस स्थान का अनुभव है, फर्रुखाबाद के बहुत से लोग जो अब भी जीवित हैं स्वामी जी के रात भर गङ्गा की रेती में नग्न पड़े रहने का ऐसा ही वर्णन करते हैं।

अनुवादक.

II पथप्रदीप

ईश्वर ने इस व्यक्ति को इस लिये भेजा कि वह ऐसे समय में जबकि भारत के लाखों पुरुष रात्रि में घूम रहे थे, प्रकाश दीप को ऊँचा करे। दयानन्द उन ज्योतिस्तम्भों में से एक है जो समय २ पर प्रकट हुये हैं और जो भारत को अन्धकार से प्रकाश में लाते रहे हैं, दयानन्द का प्रकाश-प्रदीप वैदिक विज्ञान था!

दयानन्द के एक जर्मन समालोचक ने ठीक ही कहा है:—

> 'दयानन्द सरस्वती उदार विचार रखने वाले व्यक्ति थे, वे एक अद्भुत स्वप्न देखने वाले आदर्शवादी थे, उन के मन में उस भारत की कल्पना थी जो अन्ध-विश्वास से रहित हो, साइन्स के लाभों से पूर्ण हो' एक ईश्वर की पूजा करे, और स्वाधीनता के योग्य हो जावे, तथा सारे संसार में विज्ञान और धर्म के आदि स्रोत होने की प्रतिष्ठा उसे प्राप्त हो, प्रत्येक इस बात को स्वीकार करेगा कि पुनरुज्जीवित भारत की वह कल्पना जिसे आर्यसमाज के प्रवर्त्तक और संस्थापक ने सोचा था, बहुत ही उज्ज्वल और उत्साहवर्द्धक है'

यह उज्ज्वल दर्शन निस्सन्देह दयानन्द को एक द्रष्टा—ऋषि—* उन महान् आत्माओं का उत्तराधिकारी, जिन्होंने आर्यावर्त के जीवन को प्रोत्साहित और समृद्ध किया था—बना देता है.

* ऋषि शब्द का अर्थ हो 'द्रष्टा' अथवा भविष्य को देखने वाला (Seer) है, 'ऋषिः—दर्शनात्' ऋषि शब्द का मूल अर्थ देखना है। अनुवादक.

अथार्षेयं प्रवृणीते । ऋषिभ्यश्चैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेद यत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति, तस्मादार्षेयं प्रवृणीते ।

शतपथ का० १ । ब्रा० ४

वेदों से जो कुछ सीखा है उसे पढ़ाना ऋषियों का काम है, और जो कोई भी उन प्राचीन ऋषियों की यह सेवा करता है कि दूसरों को यह विद्या सिखावे वह स्वयं ऋषि है ।

तब क्या मेरी भूल है यदि मैं दयानन्द को 'अर्वाचीन भारत का ऋषि' कहूं ?

III प्रभात की पुकार

वेद ! जिस में १००० से कुछ अधिक सूक्त और १०००० मन्त्र हैं,

और उपनिषद् भी बहुत बड़ी धर्मपुस्तक नहीं ! परन्तु ज्ञान से भरपूर हैं ! कल्पना में शक्तिपूर्ण और उन में कितना उच्च प्रोत्साहन है !

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये, शंयोरभि स्रवन्तु नः

वह दिव्य माता (परमेश्वर) हमारी आध्यात्मिक प्यास को बुझावे और हम पर कल्याण की वृष्टि करे !

ओम् भूः पुनातु शिरसि । ओम भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओम् स्वः पुनातु कण्ठे । ओम् महः पुनातु हृदये । ओम् जनः पुनातु नाभ्याम् । ओम् तपः पुनातु पादयोः । ओम् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओम खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

जीवनदाता परमेश्वर हमारे शिर को शुद्ध करे ! पवित्र

ईश्वर हमारे नेत्रों को शुद्ध करे! सुखदाता ईश्वर हमारे कण्ठ को शुद्ध करे! सर्वज्ञ ईश्वर हमारे पैरों को शुद्ध करे, नित्य ईश्वर हमारे मस्तिष्क को शुद्ध करे, सर्वव्यापक परमात्मा सब स्थानों को शुद्ध करे *

मन्त्रों के पीछे मन्त्र और सूत्रों केपीछे सूत्र इन उच्च अभिलाषाओं और आकांक्षाओं से भरे हुये हैं कि जिन से बढ़कर पवित्रभाव मनुष्य के मुख से किसी युग में प्रकट नहीं हुये थे! बारम्बार ऋषि अपने दिव्यदर्शन में परमात्मा को- 'सब का पिता' 'विश्व का जीवन' 'सम्पूर्ण आनन्द' 'सब लोकों का रचयिता और स्वामी' 'जोकि पाप के अन्धकार को दूर करने वाला है' इत्यादि भावों के साथ पुकारते हैं. और बारम्बार हम इस विचार को प्रकट हुआ पाते हैं:—

अन्तरिक्ष में स्थित सब लोकों में शान्ति हो! आकाश, जल, पृथ्वी और वायु में शान्ति हो प्राणियों और वनस्पतियों के लिये शान्ति हो! सर्वत्र प्रत्येक वस्तु के लिये शान्ति हो और यह शान्ति हमारे लिये भी हो!

इन अपने आर्यपूर्वजों के सूक्तों (भजनों) में मुझे वह पुकार सुनाई देती है जो कि, मेरा गम्भीर विश्वास है कि, आधुनिक जगत् के लिये भी मूल्य रखती है, उन में ऐसी प्राचीनता है, जिसमें बुढ़ापा नहीं, ऐसी प्राचीनता' जो मरती

---

* उपर्युक्त वाक्य का अर्थ करते हुये—'ओं महः पुनातु हृदये, (महान् ईश्वर हृदय को, शुद्ध करे) और 'जनः पुनातु नाभ्याम्' (जगदुत्पादक ईश्वर नाभि को पवित्र करे), इन वाक्यों का अर्थ छोड़ दिया है। अनुवादक.

नहीं, अपि तु प्रकृति के समान अपनी शक्ति को प्रतिदिन नया कर लेती है, उषा (प्रभात) को एक वैदिक सूक्त में देवताओंकी माता कहा गया है. आर्य ऋषियों ने जो इतिहास के उषःकाल में उत्पन्न हुये हमारे लिये एक सन्देश भेजा है, जिस से मेरा विश्वास है कि, राष्ट्रों को मुक्ति प्राप्त होगी। हमें प्रभात उषःकाल—की पुकार अवश्य सुननी होगी यदि हम जानना चाहते हैं कि सभ्यता का पुनर्निर्माण किस तरह होगा! 'अन्तोले फ्रांस' * ने ठीक कहा है

'हमें भूतकाल की प्रत्येक वस्तु तुच्छ समझकर फेंक न देनी चाहिये, क्योंकि भूतकाल के आधार पर भविष्य का भवन खड़ा कर सकते हैं'

अर्वाचीन युग की वैज्ञानिकता और बुद्धिपूर्वक संगठनप्रणाली बहुमूल्य है, हमारा उन के बिना काम नहीं चल सकता, परन्तु आधुनिक युग का बड़ा ख़तरा उसका जीवनके केवल एक हिस्से में लग जाना है, इसी लिये दूसरों से अलग रहने के, वैभव इकट्ठा करने के, और अत्याचार के भाव पाये जाते हैं, इसी लिये व्यक्ति और राष्ट्रों को पीड़ा हो रही है, अपनी अन्तरात्मा को, नित्य ईश्वर की स्वभाविक प्रेरणा को हम ने दबा दिया है! पवित्रता और एकता के भाव को हमने कुचल डाला है! ऋषि ने बतलाया था— 'जिस तरह शरीर पानी से शुद्ध होता है उसी तरह मन

---

* यह फ्रांस का अत्यन्त प्रसिद्ध उपन्यास लेखक है, इस की प्रशंसा सारे युरोप में हुयी, उस को 'साहित्य' के लिये प्रसिद्ध 'नोबेल' पारितोषिक भी मिला था,

सत्य से, और आत्मा तप से शुद्ध होता है * आर्य ऋषियों ने हमारे लिये, विद्या, एकता, और 'तपस्या' का सन्देश छोड़ा है. सब में एक ही प्राण और एक ही आत्मा है ! और क्या यह सत्य नहीं है कि अविद्या से फूट फैलती है और विद्या से एकता बढ़ती है. विद्या मेल को कहते हैं. विद्या एकता की ओर ले जाती है. यही हम प्राचीन ग्रन्थों में पाते हैं. परम एकता का सन्देश—प्रकृति के भीतर सब वस्तुओं की एकता मनुष्यता के भीतर सब राष्ट्रों की और विश्वजीवन में सब प्राणियों की एकता—यह सन्देश एक प्राचीन जाति का है--आर्य लोगोंका है जोकि भोगवाद के कीचड़ में फंसी सभ्यतामें रहने वाले हम लोगोंकी अपेक्षा उस 'विश्वात्मा' के अधिक समीप रहते थे. यह सन्देश ऋषियों की यह बुद्धि, प्रभात का सन्देश है ! और इस सन्देश के सुनने से उन उत्पादक शक्तियों (Creative Forces) के जागने की आशा है जिन की हमें स्वराज्यस्थापना के लिये, भारत में नवयुग—एक बड़े नवयुग,-और सभ्यता के पुनरुज्जीवन का प्रारम्भ करने के लिये तत्काल आवश्यकता है।

IV शक्तिशाली पुरुष धन्य हैं

वेद के अमरीकन समालोचक डाक्टर ब्लूमफ़ील्ड कहते हैं, सारे हिन्दू साहित्य में राष्ट्रीय उन्नति और राष्ट्रीय आशा का कोई भाव प्रकट नहीं हुआ है. मैं ज़ोरदार शब्दों में इस का खण्डन करता हूं; यह विचार ग़लत और आर्य आदर्श

---

* अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥
मनुस्मृति

से विरुद्ध है। प्राचीन आर्य 'शक्ति और बल' के सन्देश में विश्वास रखते थे। वैदिक सूक्त 'शक्ति' के वायुमण्डल में चलते दिखाई देते हैं। यजुर्वेद में एक अति संक्षिप्त-प्रार्थना है कि 'तुझे शक्ति के लिये'-अर्थात् यह आहुति यज्ञकर्त्ता शक्ति प्राप्त होने के लिये देता है। धर्म के साहित्य में सब से उच्च प्रार्थना एक वैदिक मन्त्र में है जिस में परमात्मा को 'बलद्' शक्ति का देने वाला कहा गया है. दूसरी वैदिक प्रार्थना इस प्रकार है*:—

हम सौ वर्ष तक देखने में समर्थ रहें!
हम सौ वर्ष तक जीते रहें!
हम सौ वर्ष तक सुनने में समर्थ रहें!
हम सौ वर्ष तक बोलने में समर्थ रहें!
हम सौ वर्ष तक स्वाधीन रह सकें!
और सौ वर्ष से भी अधिक!

यह आकांक्षायें एक ऐसी जाति में नहीं हो सकतीं जिस में राष्ट्रीय आशा और उन्नति के भाव न हों! वैदिक प्रार्थनाओं में हम बारम्बार आशा, श्रद्धा, और शक्ति के भावों को पाते हैं. जीसस ने 'आकाश में स्थित पिता' से प्रार्थना की है कि 'हमें आज दैनिक भोजन दो' हमारे आर्य

*पश्यम शरदः शतम् । जीवेम शरदः शतम् । शृणुयाम शरदः शतम् । प्रब्रवाम शरदः शतम् । अदीनाः स्याम शरदः शतम् । भूयश्च शरदः शतात् ॥

ऋषियों ने 'द्यौष्पितर' (आकाश में स्थित पिता) से स्वास्थ्य शक्ति, अधिक आयु, और बलवान् सन्तानों के लिये प्रार्थना की है। ईश्वर को 'ओज' (शक्ति का सार) कह कर सम्बोधन किया गया है. क्या सचमुच वह ईश्वर इस संसार की बीजरूप शक्ति नहीं है? अथर्ववेद में ईश्वर की स्तुति में उसे 'बल' और 'आयु' कहा गया है. 'शक्ति' विषयक मन्त्र वेदमें बहुत जगह फैले हुएहैं। और यही सिद्धान्त उपनिषद् में दूसरे शब्दों में एक बहुत सुन्दर सूत्रमें बतलाया गया है कि 'मनुष्यके कर्म ही उसके भोग को बनातेहैं.'* इसी सिद्धान्त की ऋषि दयानन्द ने नये सिरे से घोषणा की. ऋषि ने देखा कि हिन्दू समाज 'भाग्यसिद्धान्त' की झूठी थ्योरी से मुर्दा बन रहा है. उसने जो कि 'शक्ति का पैगम्बर' था जो अपनी जाति के भविष्यमें विश्वास रखता था उन रीतिरिवाज़ों को छोड़ने को कहा जिन से जाति कमज़ोर होगयी थी. दयानन्द ने फिर एक बार 'शक्ति' और 'कर्म' के आर्यसन्देश को सुनाया. 'अन्धे भाग्य पर निर्भर रहने' के बदले उसने कर्मण्यता का सिद्धान्त सिखलाया. उसने इस बातपर ज़ोर दिया कि सच्चे सुख की प्राप्तिके लिये शारीरिक शक्ति और आत्मिक शक्ति दोनों का बढ़ाना आवश्यक है. वेद का ज्ञान भी केवल पुस्तक का अध्ययन नहीं होना चाहिये प्रत्युत वह सजीव होना चाहिये न कि केवल रूढ़िमात्र, और वह हमारे अन्दर एक 'शक्ति' के रूप में प्रविष्ट हो जावे जिसे हम इस प्राचीन देश की सेवा में लगा सकें॥

कर्म = शक्ति. ऐसा भाव लेखक ने लिया प्रतीत होता है।

भारत के इतिहास में अनेक बार विदेशी लोग यहां आये हैं. सिकन्दर आया और लौट गया. हमें ज्ञात है कि किस प्रकार वीरता के साथ पोरस ने उस बलवान् आक्रमणकारी से युद्ध किया था. और चन्द्रगुप्त ने भारत में यूनान की शक्ति से युद्ध किया और उसे नष्ट कर दिया. कई शताब्दियों के पश्चात् अरब के लोग आये. उस समय शक्ति पतन की ओर थी। अफ़गान, पठान, और मुगल बारी २ से आये और भारत पर उनने शासन किया. उस के पश्चात् ब्रिटिश लोग आये उस समय 'शक्ति' सब से अधिक गिरी अवस्था मे थी.

भारतमें उस समय गड़बड़ फैली हुई थी. आज भारतकी क्या अवस्था है? क्या सब मे मेल है? क्या भारत एक है? एक सजीव जन्तु की एकता 'आन्तरिक शक्ति' से उत्पन्न होती है. एकता कागज़ पर लिखी सन्धियों से नहीं प्राप्त हो सकती. हमें 'शक्ति' की आवश्यकता है. शक्ति मर नहीं चुकी है-

उस का केवल अन्तर्धान हो गया है, उसे बाहर लाने की आवश्यकता है. परन्तु यह 'नकल करने से' या एक दूसरे से पृथक् होने से नहीं होगा. शक्ति की लहर, जो कि उस समय, जब भारत अंग्रेज़ों के हाथोंमे गया, सबसे अधिक घट गई थी; अब धीरे २ उस समय से फिर बढ़ रही है. उस शक्ति की लहर को पूर्ण उच्चता तक पहुंचाने के लिये यह आवश्यक है कि भारत निष्ठा के साथ अपने जातीयस्वभाव, एक विशेष प्रकार की अपनी संस्कृति (Culture) और परिष्कृत समाज सभ्यता पर दृढ़ रहे।

ऋषि दयानन्द ने परिश्रम के साथ सिद्ध किया कि हिन्दू-समाज के अन्धविश्वास और जोवननाशक रीतिरिवाज आर्य आदर्श के फूल की सड़ी अवस्था के रूप हैं। उन्होंने सामाजिक जीवन और धर्म की मिथ्या बातों पर कट्टर हिन्दुओं के केन्द्रों में साहस के साथ आक्रमण किया. उन्होंने बतलाया कि वैदिक युग में एक सर्वोच्च पुरुष की पूजा होती थी. उन्होंने बतलाया कि वेद केवल पुरोहितोंकी सम्पत्ति नहीं है प्रत्युत वे सब के लिये यहां तक कि स्त्रियों के लिये भी हैं. वे एक अथर्ववेद के मन्त्र की व्याख्या करते हुये कहते हैं कि 'कन्याओं को भी विद्या प्राप्त करनी चाहिये और वेद पढ़ना चाहिये' स्त्रियों की स्वाधीनता के वे बड़े समर्थक थे। मनुजी कहते हैं और ठीक कहते हैं कि 'जहां स्त्रियों का आदर होता है वहां देवता वास करते हैं' जब तक स्त्रियें और शूद्र बन्धनमें हैं, राष्ट्रकी 'शक्ति' कैदमें है. आर्यसमाजने दयानन्द की शिक्षाओं के अनुसार अछूतों और पतितों को अपना सभासद् बनाया है तथा विधवाओं और अछूतों की रक्षा की है. निस्सन्देह दयानन्द ने केवल अछूतपन के विरुद्ध ही उपदेश नहीं दिया प्रत्युत जातिबन्धन को तोड़ने का भी समर्थन किया। आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज ने बहुत वर्षों तक 'अछूतों' की सेवा की है, और इस काम को अभी हाल में ही नैशनल कॉंग्रेस और हिन्दू महासभा ने अपने हाथ में लिया है.

प्रत्येक राष्ट्रीय और सामाजिक पुनरुज्जीवन के प्रोग्राम का आधार 'शिक्षा' है। क्यों कि 'विद्या' 'शक्ति' है। और

दयानन्द ने शिक्षा के महत्व पर ज़ोर दिया। मैं विश्वास रखता हूं कि भारत में कोई ऐसी स्वयं बनी हुयी संस्था नहीं है यहां तक कि नैशनल कांग्रस भी, जिसने भारत में इतने स्कूल चलाये हों जितने आर्यसमाज ने। भारत अविद्या और अन्धविश्वासों का शिकार बन रहा है. भारत को 'बुद्धिवाद' से(Spirit of Reason) हीनया जीवनप्राप्त होगा. 'अन्तोलेफ्रांस' अपनी गुप्त उपहासपूर्ण भाषा में, जिस के लिखने में वह पूर्ण प्रवीण था, किसी 'अर्बा' नामक व्यक्ति के मुख में जो कि धार्मिक सन्देहों से तंग आये एक नवयुवक को समझाना चाहता है निम्न शब्द रखता है:— "बुद्धि से सोचना एक बड़ी कमज़ोरी है, परमेश्वर तुम्हें इस से बचाये! जैसे कि उस ने उन बड़े से बड़े सन्तों को बचाया जिस पर उस का बहुत प्रेम था और जिन्हें उस ने स्वर्ग के लिये चुना था" भारत में बहुत से स्त्री और पुरुषों की मानसिक अवस्था 'अर्बा' के समान है। वे सरकार से पददलित हैं, पुरोहितों से पीड़ित हैं, जाति बन्धन से सताये हुये हैं, किम्बदन्तियों से तंग हैं और वे समझते हैं कि 'सोचना एक बड़ी कमज़ोरी है' इस मानसिक अवस्था का इलाज शिक्षा है— अधिक शिक्षा और आर्यआदर्श के अनुसार शिक्षा! निर्बल लोग 'सोचने' से डरते हैं वे लोग 'आर्यआदर्श' का अर्थ नहीं समझते जो कहते हैं. कि आध्यात्मिक होने के लिये 'बुद्धि से सोचना' छोड़ देना चाहिये। एक सुन्दर गीत में जो कि बंगाल १९०६—१९०८ वाले स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में गाया जाता था, आता है:—

एक देश, एक ईश्वर,
एक राष्ट्र, एक मन।

निस्सन्देह एक मन चाहिये ! एक नये संशोधन को नये मस्तिष्कों की आवश्यकता है ! ज्ञान की वृद्धि अधिक और अधिक होनी चाहिये। ज्ञान 'शक्ति' है।

V सरल जीवन का मार्ग.

इस पुस्तक के एक अध्याय का शीर्षक है—'ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त. आर्य आदर्श के अनुसार ब्रह्मचर्य विद्या प्राप्ति के लिये आवश्यक है. आर्यावर्त्त में प्रत्येक विद्यार्थी ब्रह्मचारी होता था. विद्याप्राप्ति एक पवित्र काम समझा जाता था. इसी प्रकार एलेग्ज़ेण्ड्रिया के न्यूप्लेटोनिस्ट * लोग कहते थे कि बुद्धि की शुद्धता के लिये शारीरिक भोगों से बचना आवश्यक है. इस पवित्रता की प्रणाली को सादा भोजन से बहुत सहारा मिलता है. इसलिए निरामिष भोजन का इतना लाभ है. डाक्टर बेल की एक नयी हाल मे प्रकाशित पुस्तक में निरामिष भोजन को कैंसर (बड़ा फोड़ा) का इलाज बतलाया गया है. ब्रह्मचारी को मांस का निषेध था. इसका अर्थ 'प्रकृति के साथ मेल' है इसका अर्थ 'बुद्धिवाद' के साथ मेल

* एलेग्ज़ेण्ड्रिया एक समय संसार के विद्वानों और वैज्ञानिकों का केन्द्र था. वहां पर 'न्यूप्लेटोनिस्ट' एक दार्शनिक सम्प्रदाय था. ये लोग भारतीय 'योग' के समान सिद्धान्तों को मानते हुये तपस्या के साथ आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे.

है. पौराणिक युग में यह बात नष्ट हो गई. कल्पना उच्छृङ्खल बन गई . और शक्ति का अन्तर्धान हो गया. भारत असंख्य मूर्तियों और जातियों से भर गया. और परिणाम यह हुआ, जैसा कि डाक्टर ब्लूमफ़ील्ड कहते हैं:—एक देश पर जिस में ३० करोड़ निवासी रहते हों ६०००० हज़ार विदेशी सैनिक और ६०,००० सिविलयन् लोगों के द्वारा शासन करने का दृश्य है ! भारत एक देश है जहां एक प्रसिद्ध कहावत के अनुसार ' आठ ब्राह्मण और नौ चूल्हे' दिखाई देते हैं. अन्ध-विश्वास से फूट फैलती है और ईश्वरभावना से एकता. और उस प्रभु को भारत ने तथा दूसरे अर्वाचीन राष्ट्रों ने भुला दिया है .

यह स्पष्ट है कि भारत उस समय महान् था जब उसका सादा जीवन था, उसकी परिष्कृत संस्कृति थी, और उसका आध्यात्मिक आदर्शवाद था. उसकी आध्यात्मिक उन्नति के दिन दूसरे विभागों में भी उस की आश्चर्यपूर्ण उन्नति के दिन थे. यह सोचना जैसा कि बहुत से सोचते हैं, सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि प्राचीन आर्य केवल स्वप्न लेने वालों की एक जाति थी ! और यह कहना भी ग़लत है जैसा कि एक अमरीका के संस्कृतप्रोफ़ेसर ने कहा है कि "आर्यावर्त्त की 'आश्रम-प्रणाली' में राष्ट्र के स्वार्थों और जाति के विकाश के लिये कोई स्थान नहीं है" मैंने एक से अधिक अध्यायों में इस बात को प्रकट किया है कि आर्य आदर्श में परमेश्वर के साथ ही सम्मिलन नहीं, प्रत्युत 'प्रकृति' और 'मनुष्य' के साथ भी सम्मिलन है. ऐतिहासिक विकाश में एक सम्मिलन दूसरा रूप धारण करता है. आर्यभारत में निस्सन्देह एक

उच्च-सुसंस्कृत सभ्यताका विकाश हुआथा. आज लोग 'भोग' के पीछे पागल होकर पड़े हुये हैं. बड़े जोश के साथ अपने बल और धन को बढ़ाने में लगे रहे हैं जिस का फल या तो पूंजीपतियों की प्रभुता या बुभुक्षा से उत्पन्न 'बोल्शेविज़्म' के रूप में दिखाई देता है. दोनों हो इतिहास के रहस्य को नहीं जानते, उस के अनुसार 'मैत्रेय का सिद्धान्त' * सब राष्ट्रों के ऊपर है. और न वे जीवन के शास्त्र को समझते हैं जिसके अनुसार सुख का रहस्य 'सादगी' में है, युरोपके एक विचारकने लिखा कि 'सभ्यता' निरा भ्रम ही है. उसकी आशा प्रकृति की ओर फिर से लौटने में थी. मनुष्य दुःखित हो रहा है क्योंकि उस का जीवन कृत्रिम है. सुख का मार्ग आध्यात्मिक मार्ग है वह सादे जीवनका मार्ग है. यही प्राचीन **'आर्यमार्ग'** है

VI जहां कृष्ण बंशी बजाता था.

और इस मार्ग को प्रकाशित करने के लिये भगवान् ने दयानन्दके हाथों मेंएक **प्रदीप** दिया. जैसी **'दयानन्द'** में मुझे प्राचीन आर्यवर्त्तकी झलक दिखाई देतीहै वैसी बहुत कम दूसरों में दीखती है. दयानन्द मुझे आर्य-भारत का प्रकाशक, भारतीय भारत का चिन्ह, प्रभात का देवदूत, और भविष्य

* 'मैत्रय' बुद्ध का नाम है. इसका तात्पर्य यह है कि 'पारस्परिक प्रेम का सिद्धान्त'

का अप्रसन्देशहर प्रतीत होता है ! उन के देहान्त को चालीस वर्ष से अधिक हो गये. एक महीने के पश्चात्* उसके हज़ारों भक्त और शिष्य मथुरा में एकत्रित होंगे जहां ऋषि का दूसरा जन्म हुआ था. मथुरा में ऋषि को विरजानन्द मिले. मथुरा में वह मकान अब तक विद्यमान है जहां इस वैदिक ऋषि का निवास था और दयानन्द ने उससे विद्या प्राप्ति की. कब आर्यसमाज उस भवन को प्राप्त कर उसे एक नये मन्दिर के रूप में स्थिर रखने का प्रबन्ध करेगा, जहा कि पूर्व के दो तपस्वी ऋषियोंने अपना कार्य किया और ईश्वर पूजा की थी ?* मथुरा में ही ऋषि दयानन्द ने अपने मिशन पर आने की पुकार सुनी.

मथुरा, गोपाल कृष्ण की पवित्र भूमि. हिन्दू हृदय को प्यारी, अतिशय प्यारी है ! जब मैं शताब्दी के दिन मनुष्यों की भीड़ को उस स्थान पर ऋषि दयानन्द की पूजा करने के लिए एकत्रित होने का चित्र खींचता हूं, मेरा मन एक क्षण के लिये एक दूसरे दृश्य की ओर चला

---

*जिस समय लेखक ने यह पंक्तियें लिखी उस समय मथुरा में शताब्दी का एक मास शेष था.

अनुवादक.

*दयानन्दजन्मशताब्दी सभा इस मकान को लेने का निश्चय कर चुकी है परन्तु कतिपय कारणों से यह अभी तक नहीं लिया जा सका है.

अनुवादक.

जाता है. गृध्रकूट पर्वत की गुफा ! जहां बुद्ध ने समाधि लगाई थी ! वहीं पर कई शताब्दियों के पश्चात् एक चीनी यात्री आया . वह फूलों का सादा उपहार लेगया था ! चीनी वृत्तान्त कहते हैं कि जब वह गुफा के निकट पहुंचा तो उसका हृदय मनोभावों के आवेश से भर आया और नेत्र अश्रुओं से !

मैं भी एक यात्री हूं ! और प्रेमाश्रपूर्ण नेत्रों के साथ मैं तुझे अपने प्रेम की माला अर्पण करूंगा ! हे प्राचीन आदर्श के ऋषि !

लोगों ने तुझे सताया क्योंकि तू प्राचीन झलक का साक्षी था ! परन्तु तू अपने विश्वास में दृढ़ था और दुःख सहन में धीर !

आज तेरे देश निवासी तेरे जन्मदिन को गीतों के गीत से—उन वैदिक सूक्तों से जिन्हें इतिहास के प्रभात में ऋषियों ने गाया था—मना रहे हैं !

आज, मुझे प्रतीत होता है कि पक्षी भी उन कुञ्जों में प्रसन्न हो रहे हैं जहां मेरे हृदय के अराध्यदेव **श्री कृष्ण** ने बंशी बजाई थी !

दयानन्द तुम मरे नहीं हो. तुम अब अकेले नहीं ! तुम चालीस वर्ष से अधिक के काल में और भी महान् हो चुके हो!

तुम्हारा स्वप्न बहुत से हृदयों में पहुंच चुका है. और तुम्हारा सन्देश अनेकों मनों में गूंज रहा है !

इस प्रेम और उत्साह से भरे **पूर्वीय देश** में, तुम्हारे निज जाति के भविष्य के विश्वास ने बहुत सी उच्च आत्माओं में एक **ज्वाला** प्रज्वलित कर दी है !

तुम अपनी इस प्राचीन जाति के प्रोत्साहन देने वाले हो !

मैं तुम्हें देखरहा हूं ! हे पुनरुज्जीवित भारत के ऋषि— मैं तुम्हें अपने **स्वप्न** और **संगीत** के साथ मिला हुआ देख रहा हूं.

यह **संगीत** शक्तिसम्पन्न, स्वाधीन, आर्य जातिका है!

यह स्वप्न दिव्य मनुष्यता का है !

कराची टी० एल० वास्वानी

जनवरी १९२५
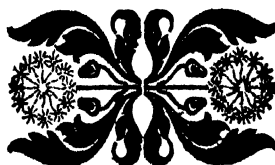
महान् समाधान की खोज में

एक रात को मैं अपनी खिड़की से तारों की ओर देख रहा था और कहने लगा:—'इन तारों ने उस प्राचीनयुग के भारत को भी देखा होगा' तब मैंने हृदय की वेदना के साथ प्रश्न किया:— "परन्तु कितनों को उस भारत का स्मरण है? कितनों को उसका प्राचीन सन्देश याद है-'नित्य ईश्वर एक है और उसमें कोई जाति का भेद नहीं' यह सन्देश गत शताब्दी के कुछ महान् भारतीय आत्माओं की जीवनी से प्रकट हो रहा है. उनके पारस्परिक भेदों पर विचार करो—उनके शिष्यों से कहो और स्वयं एक ओर खड़े रहो! परन्तु उनके भेदों में ही एकता है. और मैं जो ऐक्य का प्रेमी हूं उन महान् व्यक्तियों को परमात्मा के एक परिवार में भाइयों की तरह देखता हूं. मैं प्रेमपूर्ण श्रद्धा के साथ अर्वाचीन भारत के 'धार्मिक नवीन युग' के सब नेताओंके आगे शिर झुकाता हूं. उनमें से प्रत्येक भारत के भिन्न २ युगों के आदर्शों का साक्षी है! प्रत्येक भविष्य का अग्रदूत है! प्रत्येक मार्ग-प्रदीप है. उन में से एक आर्यसमाज का संस्थापक स्वामी दयानन्द था. उन के अन्दर एक शक्ति थी. मेरा विश्वास है कि आगामी दिनों में उन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होगा. मैं समझता हूं कि उन के सन्देश और जीवनी का

मूल्य अब सार्वभोम हो चुका है।

आइनिङ्ग कहता है कि 'आत्मा के विकाश को छोड़ कर और कुछ अध्ययन करने योग्य नहीं'. सचमुच दयानन्द के आत्म-विकाश की कहानी मेरे लिये अद्भुत सौन्दर्य रखती है!

उनकी जीवनी मेरे विचार में पांच बड़े भागों में बट जाती है:—

(I) १८२४-४५; बाल्यकाल और कुमारावस्था.

(II) १८४५-१८६०; आत्मिक खोज का समय.

(III) १८६०-१८६३; शिष्य बनकर अध्ययन.

(IV) १८६३;शान्ति पूर्वक विचार.

(V) १८६३—१८८३; प्रचार और संगठन का समय.

१८२४ई० में काठियावाड़ के अन्तर्गत मौर्वी राज्य के एक ग्राम में उनका जन्म हुआ. उन के पिता एक सम्पन्न लेनदेन करने वाले व्यक्ति थे. जिन का नाम 'अम्बाशङ्कर था' इन्हें पता नहीं कि उनका पुत्र अर्वाचीन भारत में संस्कृतविद्या और शास्त्रार्थमें दूसरा शङ्कराचार्य होगा. शङ्करके समान दयानन्द का अनुसन्धान करने वाला मस्तिष्क था. अम्बाशङ्कर लेनदेन ही न करते थे वे ज़मीदार भी थे 'जमादार' भी अर्थात् गांव के राज्यकर को इकट्ठे करने वाले और मजिस्ट्रेट। वे 'शिव' और 'लक्ष्मी' की पूजा करते थे. उसी प्रकार उनका पुत्र मूलशङ्कर (जो कि उस समय दयानन्द का नाम था) भी करता था. वह १८३४ ई० में मूर्तिपूजा करना प्रारम्भ करता

है, शिव की कथा सुनने में उनकी बड़ी रुचि है. १८३८ ई० में शिवरात्रि की रात को वह अपने पित के साथ शिवमन्दिर को जाता है. उपवास करता है, सारी रात जगता है,और एक चूहे को शिव की मूर्ति पर उस खाद्य सामग्री को जो देवता पर चढ़ाई गई थी खाते हुये देखता है. दिव्यआत्मा (ईश्वर) उसकी आत्मा को अनेक प्रकार से प्रभावित करतो है। और मूलशङ्कर १४ वर्ष की आयु में आत्मा की पुकार सुनता है। १८३८ की स्मरणीय शिवरात्रि की रात के समय उसकी आत्मा बोलती है. देवता के प्रति चूहे का स्वच्छन्द व्यवहार मूलशङ्कर के मन में ऐसे सन्देह जगाता है जो कि समय पाकर 'नीव खोज' का रूप धारण कर लेते हैं. बालक अपने अन्दर प्रश्न करता है:—क्या यह संसार के पति की मूर्ति हो सकती है? सत्य का मार्ग प्रश्नों और उत्तरों का मार्ग है बहुत से मनुष्यों ने सेव को गिरते हुये देखा था, परन्तु यह न्यूटन ही था जिस ने देखा और प्रश्न किया:—क्यो सेव पृथ्वी पर गिरता है? लगातार खोज के पश्चात् उसे उत्तर मिला:—यह आकर्षण का सिद्धान्त (Law of gravitation) है. न्यूटन साइन्स काएक ऋषि बन गया. बहुतसे लोग शिवके मन्दिर में देवता पर पूजा चढ़ाने के लिये गये थे. परन्तु यह दयानन्द ही था जिस ने चूहे को मूर्ति पर दौड़ते और खाद्य पदार्थों को खाते देखकर पूछा:—'क्या यह मूर्त्ति ही वह सर्वोच्च शक्ति जीवन की वास्तविक स्वामी हो सकती है?'

मूलशङ्कर के पिता, बहुत देर तक जगने में असमर्थ हो कर सो गये हैं. और पुजारी भी मन्दिर के बाहर सो रहे हैं.

केवल मूलशङ्कर जगता है. अनेक विचार उस के मस्तिष्क में उठ रहे हैं:— क्या यह मूर्त्ति महादेव-संसार के सब से बड़े देव-की हो सकती है ? दयानन्द अपने आत्मचरितमें लिखते हैं।

> विचारों को अधिक देर तक रोकने में असमर्थ हो कर एक साथ मैंने अपने पिता को जगाया और उन से पूंछा कि क्या मन्दिर में शिव का यह चिन्ह ही स्वयं महादेव--धर्मग्रन्थों का महान् देव-है ? मेरे पिताने कहा 'तुम यह प्रश्न क्यों करते हो' मैंने उत्तर दिया 'क्योंकि मैं इस बात को असंभव समझता हूं कि सर्वशक्तिमान्, सजीव, परमेश्वर और इस मूर्त्ति को जो कि अपने ऊपर चूहे को चलने फिरने देती है और बिना किसी प्रकार का रोक के अपने को भ्रष्ट होने देती है—एक समझूं' ।

मूलशङ्करने पुकार को सुना और उसे महान् समाधान की खोज में जाना आवश्यक होगया. अब उसे सच्चे शिव की तलाश में, सब देवों के परे उस परमप्रभु की खोज में घूमना आवश्यक है. उसे इस के लिये माता पिता और घर बार को छोड़ना होगा. वह सत्य को नहीं छोड़ सकता. कुछ वर्ष बीत जाते हैं. आत्मा की आवाज़ १४ वर्ष की बहिन की मृत्यु के द्वारा फिर आती है. ऋषि दयानन्द लिखते हैं 'यह मेरे जीवन में पहिला ही वियोग था और इससे मेरे हृदय पर बहुत गहरा धक्का पहुंचा, मैं पत्थर की भांति विचारतरङ्ग में डूबा खड़ा था' मनुष्य अस्थिरता से बचने के लिये क्या करे ? मृत्यु का मुकाबिला किस तरह करे और कैसे अमरता को

प्राप्त हो ? ऐसे प्रश्न मूलशङ्कर के मन में आन्दोलित हो रहे थे! वह केवल १८ वर्ष का था परन्तु वह जीवन की अस्थिरता अनुभव करने लगा. वह जानता है कि मनुष्यों के जीवन अस्थिर हैं उनमें से एक भी नहीं है जो मृत्यु के क्रूरग्रास से बच सके! उसे भी एक दिन मृत्यु का सामना करना पड़ेगा, फिर वह मोक्ष के लिये किस का सहारा ले ? वह पूछता है "कहां मुझे मुक्ति पाने के निश्चित साधन प्राप्त हो सकेंगे" ? थोड़े दिन पश्चात् ही उसके चाचा का देहान्त होता है. ऋषि दयानन्द लिखते हैं 'वे अत्यन्त विद्वान् थे और उनके अन्दर अनेक दिव्य गुण थे. उनका मुझ पर बड़ा प्रेम था और जन्म से ही मैं उनका कृपापात्र बन गया था. उन की मृत्यु ने मुझे और भी अधिक उद्विग्न कर दिया और मेरी यह धारणा अधिक दृढ़ होगई थी कि इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है और सांसारिक जीवनमें कोई अभिलषणीय वस्तु नहीं है जिस के मनुष्य को जीना चाहिये,

यह कथा आगे चलती है. इससे मुझे एक दूसरी घटना याद आती है जो इसलाम के महान् पुरुष, हरून अल रशीद के सम्बन्ध में है:—

> एक दिन हरून अल रशीद ने एक किताब पढ़ी जिस में कवि ने लिखा था:—
> वे राजा कहाँ हैं ? और उन में से शेष अब कहां हैं
> जो एक किसी दिन संसार के स्वामी थे ?
> वे अपनी सारी शान और शौकत के साथ चले गये!
> वे उसी मार्ग में गये है जिसमें से तुझे भी जाना है !

ऐ मनुष्य, तू अपने हिस्सेमें-संसार और उन वस्तुओं को, जिन्हें संसार सुन्दर कहता है, चुनता है! ले, ले, जो कुछ तुझे यह संसार दे सकता है, पर याद रख अन्त में 'मृत्यु' होनी है. हरुन अल रशीद ने अपना शिर झुकाया और पुस्तक के पृष्ठ पर जिसे वह पढ़ रहा था आंसू गिर पड़े!

मूलशङ्कर की आयु इस समय २० वर्ष की है. वह मृत्यु के सामने खड़ा हो चुका है और प्रश्न कर चुका है "क्या इस सब का तू ही अन्त है? या कोई इस विश्व में **अमर** भी है? यदि कोई **अमर** है तो कौन मुझे मृत्युसे-मृत्युके द्वारा अमरत्व तक पहुंचायेगा"? मूलशंकरके अन्दर '**विद्या**' के लिये तीव्र अभिलाषा है. वह अपने पिता से कहता है कि वे उसे संस्कृत विद्या के केन्द्र काशी भेज दें. उसकी माता स्त्री को स्वाभाविक बुद्धि से समझ जाता है कि उसका पुत्र विवाह से बचने के लिये काशी जाना चाहता है. वह कहती है कि 'विद्वान् पुरुष प्रायः विवाह करना नहीं चाहते, और तुम्हारे काशी जाने से विवाह में बाधा होगी' तब मूलशङ्कर किसी समीपवर्ती ग्राम में एक ब्राह्मण के पास पढ़ने की आज्ञा लेता है. इस ब्राह्मण आगे मूलशङ्कर अपना हृदय खोल देता है और कहता है कि विवाह का विचार कितना घृणित है! ब्राह्मण इसकी सूचना मूलशङ्कर के पिता को देता है जो इसे सुन कर अपने पुत्र के शीघ्र विवाह की तैयारी करने लगता है.

मूलशङ्कर की आयु २२ वर्ष की है. पहिले ही से 'आत्मा' का 'बिना तार का तार' (पुकार) उसके अन्दर काम कर रहा है. सत्य उसे, जैसा कि बहुधा होता है, जङ्गल की ओर पुकार रहा है! वह संसार के प्रलोभनों का मुकाबला करने के लिये खड़ा हो जाता है. वह उसके अपने ही शब्दों में "अपने और विवाह के बीच सदा के लिये बाधा" खड़ी करना चाहता है. "आत्मा के घर की तलाश" में वह अपने धनी पिता का घर छोड़ कर चल देता है ! यह १८४६ ईसवी का वर्ष है ! धन का वह तिरस्कार करता है क्योंकि उसे 'विद्या' की खोजहै. 'भोग' को वह छोड़ता है क्योंकि उसे 'योग' चाहिये. उसका पिता कुछ सिपाहियों के साथ उसका पीछा करता है. सिद्धपुर के एक शिवालय में वह पकड़ा जाता है. दयानन्द लिखते हैं:——

> मेरे पिता अपने सिपाहियों के साथ सिद्धपुर आये. मेले में उन्होंने पग २ पर मेरा पता चलाया, और विद्वान् पण्डितों में जहां २ मैं गया था वहां से मेरा पता चला कर अन्त में एक दिन सवेरे एक साथ मेरे सामने आ पहुंचे. उनका मुख क्रोध से जल रहा था. उनने मुझे धिक्कारा और कहा कि तूने सदा के लिये अपने कुल पर कलङ्क का टीका लगाया है. जब मैंने उनकी दृष्टि की ओर देखा तो मैं भलीभांति समझ गया कि अब जवाब देने से कोई लाभ न होगा. मैंने मन में सोच लिया कि अब मुझे क्या करना चाहिये. मैं हाथ जोड़ कर उनके पैरों में गिर पड़ा

> और नम्रतापूर्ण शब्दों में उनका क्रोध शान्त करना चाहा. मैंने कहा 'मैं स्वयं यहां बहुत दु:खित था और घर लौटना चाहता था कि इतने में भाग्य से आप यहाँ आगये.' अब मैं प्रसन्नतापूर्वक आप के साथ घर चलने को तैयार हूं.

दयानन्द स्वीकार करता है कि यह कथन सत्य न था. उस ने घर वापिस जाने का विचार न किया था, और वह घर नहीं जाना चाहता था. दयानन्द लिखते हैं 'मेरा विचार उतना ही दृढ़ था जितना मेरे पिता का; मैं अपने उद्देश्य पर स्थिर था और भाग जाने का फिर अवसर ढूंडने लगा' 'भय' से 'असत्य' उत्पन्न होता है. इसलिये महर्षि मनु ने कहा है कि "तुम दूसरों से मत डरो और न दूसरों को अपने से डरने दो." दयानन्द यह सच्चाई के साथ कहता है कि उसने अपने पिता से असत्य कहा. दयानन्द का विचार घर लौटने का न था. दयानन्द का पिता क्रोध के आवेश में अपने पुत्र के गेरुवे वस्त्रों को फाड़ डालता है, ज़ोर से उस के हाथ से तूम्बा छीन कर फेंक देता है, उसे मातृघातक कहता है और उसे सिपाहियोंको सौंप कर रात दिन उस पर पहरा रखने की आज्ञा देता है.दयानन्द रातके तीन बजे जबकि पहरे देने वाला सिपाही सोजाता है अपने भागने का रास्ता निकाल लेता है।

सत्य के मार्ग में दु:ख और आँसुओं का फर्श बिछा हुआ है! पन्द्रह वर्ष तक वह खोज में लगा रहता है—अहमदाबाद पहुंचता है, वहां से बड़ौदा जाता है. और वहां वेदान्ती

सन्यासी ब्रह्मानन्द के प्रभाव में आता है. इस के पश्चात् वह नर्मदा के किनारे चला जाता है. वहां पर उसे 'चिदाश्रम' के समान विद्वान् सन्यासी मिलते हैं. वहां पर उस का स्वामी परमानन्द परमहंस से सम्पर्क होता है और उनके पास वह कुछ महीने अध्ययन करता है. वहीं पर उसे शङ्कराचार्य के दक्षिण शृङ्गेरीमठ के स्वामी प्रेमानन्द सरस्वती मिलते हैं यह सन्यासी जो कि वेदान्त के गम्भीर विद्वान् थे उसे सन्यासाश्रम में प्रवेश कराते हैं और उसे सन्यासाश्रम का चिन्ह **'दण्ड'** देते हैं. और उन को वह नाम देते हैं जो अर्वाचीन भारत के इतिहास में सदा बना रहेगा. मूलशङ्कर, जिस का ब्रह्मचारी की दशा में **'शुद्धचैतन्य'** नाम था, सन्यासी होने पर वह प्रसिद्ध **'दयानन्द सरस्वती'** नाम धारण करता है.

दयानन्द की यह कथा उस महान् समाधान को पाने के लिये स्थान २ पर घूमने की कथा है. अपने भ्रमणमें दयानन्द को एक धनी महन्त मिलता है जो कि उसको अपने मन्दिर के महन्त की गद्दी अर्पण करने को तैयार है. दयानन्द उस गद्दी को लात मारते हुये कहते हैं कि "मैंने विद्या के लिये और मोक्ष के लिये सब घर बार छोड़ा है" विवाह और धन उसे प्रलोभित नहीं कर सकते ! वे अपने आत्म-चरित में लिखते हैं "एक नये संशोधन (Reformation) को खड़ा करना मेरा वास्तविक उद्देश्य है" वे भारतवर्ष के लिये और मनुष्य जाति के लिये 'फ़क़ीर' बन जाते हैं.

दयानन्द और शोपनहार * के बीच में कितना अन्तर है ! दोनों प्राचीन भारत की विद्या पर मोहित थे. दोनों ऐन्द्रियिक इच्छाओं के संयम में विश्वास रखते थे. परन्तु शोपनहार 'तपस्वी' हुये बिना एक दार्शनिक था. दयानन्द दार्शनिक, तपस्वी और एक सन्त था. उसका विश्वास केवल 'विचारों' के दर्शनशास्त्र में न था. किन्तु 'जीवन' की फ़िलासफ़ी में था । यह दर्शनशास्त्र उस के आध्यात्मिक गुरुओं का था और यह फिलासफी ऋषियों की थी. उस का सिद्धान्त है, कि:—"अपने राष्ट्र की सेवा के लिये 'तपस्या' करो."

मुझे सेण्ट ऐन्थनी की जीवनी याद आती है. वह २५० ईसवी में मिसर देश में धनी माता पिता के घर उत्पन्न हुआ. उसे किसी दिन क्राइस्ट के न्यूटेस्टमेण्ट के यह शब्द सुनाई देते हैं:—"जाओ, जो कुछ तुम्हारे पास है बेच दो". वह अनुभव करता है कि यह शब्द साक्षात् उसी को सम्बोधन करके कहे गये हैं. वह सांसारिक जीवन छोड़ देता है और 'तपस्या' का नया जीवन व्यतीत करने के लिये निकल पड़ता है. दयानन्द भी संसार को छोड़ता है और उस महान्

* शोपनहार प्रसिद्ध जर्मनी का फ़िलासफ़र था जिसकी यह प्रसिद्ध उक्ति है कि 'उपनिषदों के समान किसी पुस्तक ने मेरी आत्मा को शान्ति नहीं दी है'.

अनुवादक.

'खोज' के लिये एक यात्री बनकर चल पड़ता है. कौन

उसका पिता है और कौन माता ? वही 'महान् प्रभु'

सत्य की सेवा,ही जिसकी वास्तविक पूजा है. और दयानन्द

अपना घर कहां ढूंढता है ? प्रत्येक देश में और उनके हृदयों में जो ईश्वर की पूजा करने वाले हैं और आर्य जाति को नये सिरे से उठाने को तैयार हैं.

प्रकाश, मार्ग दिखाओ!

क्यों दयानन्द की जीवनी इस जाति के लिये उपकारक और प्रोत्साहन देने वाली है? एक बड़ी सच्चाई—जो इस जीवन की सच्चाई—है जिसका अनुभव दयानन्द को छोटी ही आयु में हो गया यह है:—'मैं सत्य के लिये हूं' और सत्य की खोज में वह स्थान २ पर मारा फिरता है. उसका साहस न्यून नहीं होता. उसका विश्वास दृढ़ है:—'दयापूर्ण प्रकाश, मुझे मार्ग दिखाओ!'. वह कुछ योगियों से मिलने अहमदाबाद जाता है. वह आबू पहाड़ को पार करता है, और श्रीनगर तक पहुंचता है. वह कुछ दिन केदार घाट रह कर बड़े योगियों की तलाश में फिरता है परन्तु कोई नहीं मिलता. कोई कठिनाइयें इस भावी 'सत्य के सिपाही' को नहीं डरा सकतीं.

एक वाक्य में वह 'खोज' के इन वीरतापूर्ण दिनों के अपने एक भ्रमण का वर्णन करता है. सरदी की ऋतु है. पहाड़ोंकी चोटियाँ और मार्ग बरफ से ढके हुये हैं! वह आगे किस तरह प्रस्थान करे? अलखनन्दा नदी सामने बह रहीहै. वह रास्ता पाने के लिये उसे पार करने का निश्चय करता है. उस के कपड़े हलके और थोड़े हैं. सरदी असह्य है. वह लिखता हैं 'भूख और प्यास ने मुझे सता रक्खा था, मैंने एक बरफ का टुकड़ा निगल लिया पर कुछ आराम न मिला' वह नदी को पार करना प्रारम्भ करता है. नदी की सतह में बरफ़

के छोटे २ टुकड़े पड़े हैं. वे उसके नंगे पैरों को काटते हैं- घाव हो जाता है और खून बहने लगता है, परन्तु ठण्डक उन्हें जड़ बना देती है! भयानक सरदी के कारण दयानन्द मूर्च्छित सा हो जाता है! वह अन्ततः नदीको पार कर दूसरी ओर पहुंच जाता है. वह अपने शरीर के कपड़े उतार के उन से अपने पैरों को घुटनों तक ढांकता है. वह अशक्त और किंकर्त्तव्यविमूढ़ है. वह आगे नहीं बढ़ सकता और सहायता की प्रतीक्षा करता है. तब वह दो पहाड़ियों को देखता है जो उसे प्रणाम करते हैं. वे दयानन्द से कहते हैं कि 'हमारे साथ घर तक चलो--वहां हम तुम्हें भोजन देंगे' वह उत्तर देता है कि उसके पैर चलने में असमर्थ हैं. वह वहीं खड़ा रहता है और दोनों पहाड़ी परबतों की ओटमें छिप जाते हैं. कुछ समय के पश्चात् उस में शक्ति आ जाती है और वह चलता हुआ बद्रीनारायण तक पहुंचता है, जहां उसे भोजन मिलता है. वह कहता है कि 'उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों मुझ में फिर से जीवन आ रहा हो.

१८६० ई० में दयानन्द मथुरा आता है वहां उसे नेत्रहीन सन्यासी -उस का आध्यात्मिक सहयोगी, गुरु मिलता है. मानों वह अब तक इन वर्षों में इस व्यक्ति की ही जिसे देव ने उसके लिये बनाया था, प्रतीक्षा कर रहा था! क्या ऋषि दयानन्द का होना सम्भव होता यदि महर्षि विरजानन्द न होते? दयानन्द अपने लेखों में स्थान २ पर अपने गुरु को स्मरण करता है. अपने वेदभाष्य के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर दयानन्द लिखते हैं—"इस अध्याय का भाष्य स्वामी विरजानन्द के शिष्य दयानन्द ने बनाया" विरजानन्द

पण्डित नारायणदत्त भारद्वाज के पुत्र थे. ५ वर्ष की अवस्था में उन पर चेचक का आक्रमण हुआ जिससे वे नेत्रहीन हो गये. १५ वर्ष की आयु में वे अनाथ हो गये. उनने अपना जीवन अध्ययन और ध्यान में लगाने में अर्पण कर दिया. १८ वर्ष की अवस्था में स्वामी पूर्णानन्द ने उन्हें सन्यास देकर उनका 'विरजानन्द' नाम रक्खा. यह नेत्रहीन सन्यासी एक गम्भीर वेदज्ञ विद्वान् हुये. इसमें एक बड़ा कारण है कि वे जनता में '**प्रज्ञाचक्षु**'—बुद्धि ही जिस का नेत्र है,—नाम से प्रसिद्ध थे. अलवर के राजा ने उन्हें शङ्कराचार्य के श्लोकों का पाठ करते हुये सुना और वे इतने प्रभावित हुये कि उन से अलवर चलने की प्रार्थना की. सन्यासी ने इस शर्त पर जाना स्वीकार किया कि महाराजा उन से कम से कम तीन घण्टे धर्मग्रन्थ पढ़ा करेंगे. परन्तु उनने कह दिया कि 'यदि किसी दिन तुम तीन घण्टे न पढ़ोगे तो मैं तुम्हारा राज्य छोड़ दूंगा'. महाराज बड़ी चिन्ता के साथ प्रति दिन ऋषि से पढ़ते रहे. एक दिन महाराज प्रमोदोत्सव में लग गये और स्वामी जी के पाठसे अनुपस्थित रहे. जब दूसरे समय महाराज स्वा०. विरजानन्द से मिले तो उन ने यह कहते हुये कि 'महाराज आप ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़दी पर मैं अपनी नहीं तोड़ सकता' राज्य से जाने का विचार प्रकट किया. विरजानन्द ने अलवर छोड़ दिया और भरतपुर चले गये. वहां से वे मथुरा आये जहां उन ने एक संस्कृत पाठशाला खोली.

इस '**बाल ब्रह्मचारी**' और 'तपस्वी' के द्वार पर दूसरा **बालब्रह्मचारी** और तपस्वी आता है।

अन्दर से आवाज आती है:—'तुम कौन हो' ? दयानन्द उत्तर देता है 'एक सन्यासी'. 'तुम्हारा नाम क्या है ?' 'दयानन्द सरस्वती'. दरवाजा खुलताहै. विरजानन्द दयानन्दको अपना शिष्य बना लेते हैं. किस श्रद्धा और प्रेम के साथ दयानन्द अपने गुरु की सेवा करता हैं ! वह उन के प्रातःकालीन स्नान के लिये नदी से पानी लाता है, उनके घर के आंगन में झाड़ू लगाता है और प्रसन्नता पूर्वक कठोर संयम को स्वीकार करता है. यहाँ तक कि विरजानन्द के कठोर शब्दों कोभी दयानन्द गुरुका दिया हुआ पुष्पहार समझकर स्वागत करता है. बहुत दिनों के पश्चात् दयानन्द गर्व के साथ अपने शरीर पर विरजानन्द की लाठीके घावका चिन्ह दिखाकर कहा करते थे कि 'यह मेरे गुरु के प्रेम की छाप है' और जब दयानन्द ने अपने गुरु की मृत्यु का समाचार सुना तो कह उठे कि "आज संस्कृत व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया"

मथुरा के इस नेत्रहीन गम्भीर वेदज्ञ साधु के चरणों में बैठकर दयानन्द 'ऋषि कृत ग्रन्थों' का, उन ग्रन्थों को जिन्हें भारत के आध्यात्मिक और मानसिक गौरव के दिनों में ऋषियों ने बनाया था—अध्ययन करता है. कई वर्षों तक दयानन्द ने अपने गुरु के चरणों में बैठकर वैदिक विज्ञान के अमृत का पान किया. तब वह अनुभव करता है कि अब समय आगया है कि उसे चल देना चाहिये। उसका गुरु उसे आशीर्वाद और साथ ही यह महान् सन्देश देता है:—

"मेरे पुत्र जाओ, और सन्देश को फैला दो. देशमें अविद्या छाई हुई है, मनुष्य पाप और पुण्य

में भेद नहीं कर सकते, वे जाति और सम्प्रदायों के नाम पर लड़ते हैं और वेदों को नहीं जानते. तुम बाहर जाओ और उन्हें एक ईश्वर तथा वैदिक धर्म का सन्देश दो"।

दयानन्द बहुत वर्षों तक बाहर घूमता रहा है. अब वह अपना सन्देश सुनानेके लिये और उस समाधान को जो उसे वर्षोंकी खोज और साधन के पश्चात् मिला है ऊंचे स्वर से प्रकट करने के लिये, संसार में आता है; वह यह है:— "नित्य आत्मा एक है—वह सत, चित्, आनन्द है—उसकी सेवा से ही मोक्ष मिल सकती है"

जब हम एकान्त से बाहर आते हुये और दूसरों के आगे अपने सन्देश के साथ खड़े हुये उसका चित्र सोचते हैं तो एक प्रभावशलिनी आकृति प्रतीत होती है! केवल जाँघ तक का एक अंगोछा उसके शरीर पर है ! पुरोहित उसके आगमन मात्रसे भयकम्पित हो जातेहैं. वह स्वयं भय को जानता नहीं, उसके हृदयमें यह वैदिक आकाँक्षा भरी हुई है:—'मैं निर्भयता के साथ ज्योतिको प्राप्त हो सकूं' !—'अभयं नक्तमभयं दिवा' अर्थात् रात्रि में निर्भयता और दिन में निर्भयता. बीस वर्ष तक १८६३ से १८८३ तक, वह अपने हाथ में 'आर्यबुद्धि का प्रदीप' लेकर सारे देश में घूमता है. वह जाति के पुनरुज्जीवन का सन्देश सुनाता है. वह एक ईश्वर की पूजा का समर्थन करता है—और साथ ही समाज—सुधार और गोरक्षा

का भी. गोरक्षा विषय पर वह १८८० के 'थियोसोफिस्ट' में एक अनुभवपूर्ण छोटा सा लेख लिखता है, जिसका कि नीचे एक महत्त्वपूर्ण उद्धरण है :—

एक गौ मारी जाने पर ३० या अधिक से अधिक ४० आदमियोंका भोजन हो सकतीहै. परन्तु यदि वह जिन्दा रहे तो दस सेर प्रति दिन या ७॥ मन प्रति मास दूध देती है. कल्पना करो कि उसके सब दस बच्चे होते हैं और प्रत्येक बार वह दस मास तक दूध देती है तो कुल दूध की मात्रा जो एक गाय अपने जीवन में देगी ७५० मन हो जाती है. यदि एक मनुष्य के भोजन के लिये दो सेर दूध पर्याप्त समझा जावे तो एक गाय १५००० मनुष्योंका एक दिन का भोजन दे सकती है. इसके अतिरिक्त उस के बछड़ों से और भी अधिक लाभ होता है. कल्पना करो कि उस के दस बच्चे हैं, पांच बछियें और पांच बछड़े. बच्चों में से प्रत्येक उतना ही उपयोगी है जितनी कि स्वयं गौ. और पांच बछियें १५०००×५=७५००० मनुष्यों का भोजन दे सकती हैं. कल्पना करो कि एक बैल जब कि वह खेती के काम में लगाया जाता है औसत से ८००० मन अन्नपैदा कर लेता है तो ५ बछड़े इस प्रकार ४०००० मन अन्न उत्पन्न करेंगे. और यदि एक मनुष्य के लिये उतना ही अन्न अर्थात् दो सेर पर्याप्त माना जावे तो पाँच बछड़े ८००,००० (आठ लाख) मनुष्योंको एक दिन का भोजन दे सकते हैं. इस बात पर बिना विचारे किये कि इन बछड़ों और बछियों के सन्तानों

से जो लगातार बढ़ेंगी, कितना लाभ होगा, केवल एक गाय अपने सन्तानों सहित जब वह जीवित रहे तो ८७५००० मनुष्यों को भोजन दे सकती है और मार दी जावे तो अधिक से अधिक ४० मनुष्यों को.

इस के अतिरिक्त दूध और घी शरीर तथा मन दोनों के लिये माँस की अपेक्षा अधिक पौष्टिक हैं. और जैसे कि अच्छे भोजन से उत्तम स्वास्थ्य होता है उसी प्रकार उस से सच्चा साहस और दूसरे मानसिक तथा शारीरिक गुण उत्पन्न होते हैं जिनके बिना किसी को वास्तविक मनुष्य नहीं कहा जा सकता.

आगरा, ग्वालियर, जयपुर, काशी, अजमेर, बम्बई, पूना कलकत्ता, पटना, जोधपुर जहां कहीं वह जाता है अपने साथ **आर्य आदर्श** जिसमें सबसे गहरा भाव '**एकता**' का है और '**आर्य सभ्यता**' का, जिस का चिन्ह 'गाय' है सन्देश ले जाता है. उसके व्याख्यान सर्वत्र ध्यान से सुने जाते हैं जिन में वह हिन्दू पुरोहित और पश्चिम की विदेशी सभ्यता को चैलेञ्ज देता है. ऋषि के सम्बन्ध में एक रोचक 'स्मृति' वह है जो मिस्टर खापर्डे एम. एल. ए. ने अपने एक पत्र में लिखी है. वे लिखते हैं:—

मुझे उनके साथ सम्पर्क में आने का सौभाग्य गत सदी के ७० वर्ष के उपरान्त की शताब्दी में हुआ था जब कि वे बम्बई के एक श्रीमान् साहूकार छबीलदास के सुन्दर उद्यान भवन में ठहरे हुये. वे

बहुधा एक छोटी मूंज की चटाई पर बैठा करतेथे और उनसे मिलने वाले, जिनकी संख्या बहुत अधिक होती थी उनके चारों ओर बैठ जाते थे. उनके बैठने वालों में किसी प्रकार की छोटी बड़ी पोज़ीशन का भेद न होता था परन्तु उन में कोई भी उस चटाई को न छूता था जिस पर ऋषि बैठते थे—सिवाय उस दशा के जब कि वे उस 'रूबिकन्' को उनके चरण स्पर्श के लिये पार करे. स्वामी जी कुर्सी पर बैठ कर बहुत बड़ी जनता में व्याख्यान देते थे और वे सदा **'ओ३म्'** से प्रारम्भ करते थे और इसी शब्द के साथ ठीक स्वर से प्राचीन पद्धति के अनुसार उच्चारण करते हुये व्याख्यान समाप्त करते थे. और जिस समय वे **'शान्तिः' 'शान्तिः' 'शान्तिः'** बोलते थे, वह देवताओं और ऋषियों के लिये दर्शनीय दृश्य होता था !

उनकी कलकत्ते की यात्रा महत्व पूर्ण है. वहां उनका केशवचन्द्र से मेल हुआ जो कि गत शताब्दी के कदाचित्, कई शताब्दियों के सब से अधिक गहन सिद्धान्त रखने वाले पुरुषों में से थे. दोनों में पहिले दिन से ही मित्रता हो जाती है: एक अद्भुत नियम है जिसके अनुसार एक आत्मा दूसरी

*'रूबिकन' रोम में एक नदी थी जिसे पार करके एक मनुष्य किसी महान् पुरुषार्थ के लिये उद्यत समझा जाताथा
अनुवादक.

का आकर्षण करती है और महान् व्यक्ति एक दृष्टि में ही दूसरे महान् व्यक्ति को पहचान लेते हैं. मिलने के साथ ही केशवचन्द्र सेन ऋषि दयानन्द से पूछते हैं 'क्या आप ने केशवचन्द्र सेन को देखा है!' थोड़े ही प्रश्नोत्तर के बाद ऋषि उत्तर देते हैं "आप ही केशवचन्द्र सेन हैं" इसके बाद दोनों लगभग प्रति दिन मिलते हैं और घण्टों बात चीत होती है. महान् आत्मायें किसी पूर्वनिश्चित नियम के अनुसार एक दूसरे से जुड़ी होती हैं. उन के अनुयायी बहुधा लड़ा करते हैं. केशव ने ही दयानन्द के पहिले व्याख्यान का प्रबन्ध किया था और—उनने ही ऋषि को हिन्दीमें बोलनेकी सलाह दी थी* दयानन्द कलकत्तसे यह विचार ले कर लौटे कि **'वैदिक आदर्श'** के प्रचार के लिये एक **'समाज'** की स्थापना की जावे. १८७५ में उनने बम्बईमें पहिली आर्यसमाज स्थापित की. इस तरह आर्य समाज की आयु अर्धशताब्दी की है. मैं आर्यसमाज के काम के विषय में कुछ कहने की पूर्ण योग्यता नही रखता. मैं उसे आश्चर्यजनक समझता हूं. आर्यसमाज के दो नियम ये हैं।—

(१) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना (छठानियम) (२) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये, (८ वां नियम)

---

*इस से पूर्व वे संस्कृत में ही भाषण किया करते थे.
अनुवादक

आर्यसमाज के गौरव के लिये यह कहा जा सकता है कि उसने समाज सेवा और शिक्षा का बहुत सुन्दर कार्य किया है. समाज की शाखायें बर्मा, ब्रिटिशअफ़रीका, और फ़िजी में फैली हुई हैं. बहुत सी समाजें भारतवर्ष में हैं. युक्तप्रान्त और पञ्जाब का वायुमण्डल समाज से भरा हुआ हैं. समाज के स्कूल और अनाथालय हैं, कालेज और गुरुकुल है. समाज ने स्त्रीशिक्षा और मद्यनिवारण के लिये भी काम किया है, उसने अछूतों को हिन्दुओं में मिलाया है, और हिन्दूसमाज में एक नया जीवन डाला है.

जो दयानन्द को सङ्कीर्ण कहते हैं उन्होंने उसके जीवन का ग़लत अध्ययन किया है. यह व्यक्ति जिसे श्री केशवचन्द्र सेन, सर सैयद, कर्नल आलकाट और पादरी स्काट श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, अनुदार नहीं होसकता. कर्नल आलकाट दयानन्द के विषय में कहते हैं:— 'वे लम्बे क़द के, गौरवपूर्ण अकृति वाले, और सुन्दर व्यवहारयुक्त थे.'

फिर वे कहते हैं:—"स्वामी दयानन्द निस्सन्देह एक महान् व्यक्ति थे, संस्कृत के प्रगल्भ विद्वान्, असाधारण पुरुषार्थी, सङ्कल्प शक्ति युक्त, स्वावलम्बी अतएव वे मनुष्यों के नेता थे" पादरी स्काट दयानन्द के 'ओजस्वी आकार' का वर्णन करते हैं. सर सैयद एक दिन उन के पास आकर बोले कि 'यहां कुर्सी नहीं हैं'. दयानन्द ने कहा कि 'आप को फर्श पर ही बैठने की असुविधा होगी' सर सैयद ने उत्तर दिया जोकि उन्हीं के योग्य था—"मुझे अभिमान है कि मैं एक सन्त के साथ फर्श पर बैठूंगा." 'थियोसोफिस्ट' जिसे

शायद उस समय मैडम ब्लेवट्स्की चलाती थीं. ऋषि को इस युग का महान् **आर्य** कहते हैं। जैसे 'विज्ञान' सार्वदेशिक है इसी प्रकार धर्म भी. धर्मों के आचार्य किसी एक जाति की सम्पत्ति नहीं होते. मैं नम्रतापूर्वक कहूंगा कि ऋषि दयानन्द केवल आर्यसमाज के ही नहीं हैं वह सारे भारतवर्ष के हैं—नहीं, सारे संसार के हैं. किसी लेखक ने कहा है कि 'प्रतिभा संस्कृति (Culture) का फूल है' दयानन्द **आर्य संस्कृति** का फूल था! इस संस्कृति का तत्व मनुष्यजाति की आध्यात्मिक एकता है. दयानन्द का 'जाति' और 'सम्प्रयदाय' में विश्वास न था किन्तु **भ्रातृभाव** में उसका विश्वास था. उसके हृदय में वैदिक पुकार गूंज रही थी:—"आओ एक दूसरे से मधुरवाणी बोलो मैंने तुम्हें समान इच्छा और समान मन वाला बनाया है" वह अपने समाज में ईसाई और मुसलमानों को भी मिलाता है. एक उच्च जाति का मनुष्य सभा से जहाँ दयानन्द का व्याख्यान हो रहा है, एक कसाई को हटा देता है. वह उस सवर्ण मनुष्य को धमकाते हुये कहते हैं—'कसाइयों के लिये भी मेरा सन्देश है' एक नायी उन्हें मोटी रोटी देता है. दयानन्द प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं. एक वेश्या उन्हें समाधिस्थ अवस्था में देख कर प्रभावित होती है और अपने सुवर्ण के आभूषण अर्पण करने लगती है. वे कहते हैं कि 'मुझे आभूषणों की आवश्यकता नहीं, जाओ आगे से पापमय जीवन व्यतीत न करना' एक पैंशनभोगी

सरकारी कर्मचारी उन्हें मिलते हैं. वे उस से कहते हैं. 'तुम ब्राह्मण हो तुम्हारे पूर्वज संसार के गुरु समझे जाते थे और अपना जीवन मनुष्यजाति की सेवा में बिताते थे. तुम्हें उन के पदचिन्हों पर चलना चाहिये. सेवा का व्रत ग्रहण करो और भीलों में जाकर काम करो' एक वृद्धा स्त्री उन्हें मार्ग में मिलती है. वह चिथड़ों में लिपटी हुई है और कहती है 'कोई मेरा सहारा नहीं है. प्रभु तुम्हें आशीर्वाद देंगे, मुझे भोजन दो' ! ऋषि की आंखों में आंसू आजाते हैं वह अपने साथियों से कहते हैं:—" एक समय था जब भारत सुवर्ण से भरपूर था. यहाँ इतनी विपुलता थी कि अनाथ और भूखे पाये भी न जाते थे. परन्तु आज इतनी दरिद्रता है कि एक भिखारिन स्त्री मुझ से मांगती है जो कि स्वयं भिखारी हूं" तब वे एक साथी से उसे भोजन देने को कहते हैं.

ऋषि दयानन्द के हृदय में दीन और दलितों के लिये अपार प्रेम था. और इस प्रेम के बिना कोई किसी जाति को नहीं उठा सकता. सभायें, व्याख्यान, और कागज़ी शर्तों से कोई लाभ नहीं. स्वयं विद्या हो तपस्या और प्रेम के बिना शून्यहै. युवको उठो, वे लोग—किसान, ग्रामीण, दीन और पतित तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं—हज़ारों और लाखों की सख्या में वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं. उनके पास जाओ उन्हें कथा, कीर्तन वैदिक मन्त्र, और भारतीय इतिहास के वीरों के सन्देश सुनाओ. उनके समीप जाओ और उनके मनों तथा हृदयों में नव-भारत का निर्माण करो !

दयानन्द ने क्या २ कार्य पूरा किया ! इसे उस के बहुत

से देशवासी भी नहीं जानते. हम लोगोंके इस युग में उपकार भुला दिये जाते हैं. उसने एक नई जातीय जागृति का उत्तेजन किया. उस ने आर्य सभ्यता केलिए समर्पण किया और वैदिक धर्म की एक बार फिर घोषणा कर दी.

मेरे विचार में इस का रहस्य एक वैदिक प्रार्थना में आ जाता है जो इस प्रकार है:—'हमारा जीवन समर्पण के द्वारा शक्तिशाली बने'!

क्या ऋषि दयानन्द का जीवन समर्पण का जीवन नहीं है? एक प्राचीन यूनानी फ़िलासफ़र से किसी ने पूछा कि 'आप की विद्या का रहस्य और स्रोत क्या है'? उसने उत्तर दिया "मैं इटली, ग्रीस, और अफ्रीका तक गया. अन्त में भारतवर्ष पहुंचा वहां मैंने एक 'नग्न' पुरुष देखा—उसके लिये 'ईश्वर एक महान् सत्ता' थी. उस के जीवन में आत्मसमर्पण था. यह भारतीय मनुष्य "बुद्धिमान् (wise) था." क्या यही बात ऋषि दयानन्द के विषय में नहीं दुहराई जासकती?

यह सन्यासी, यह फ़क़ीर, विद्या का धनी, अपनी दरिद्रता में प्रसन्न नग्नरूप में उन लोगों को जो अपने प्राचीन उत्तराधिकार को भूल चुके थे, उस का सन्देश सुनाने के लिये स्थान २ पर घूमता फिरा. ऋषि दयानन्द के हर्ष का स्रोत ईश्वर वहमहान् सत्ता था! यह 'भारतीय मनुष्य बुद्धिमान् था' उसके जीवन में आत्मसमर्पण था.

आज बहुत से विद्वान हैं—किन्तु कितने भारतीय युवक हैं जो सर्वोच्च विज्ञान—इस आत्मसमर्पण के अध्ययन के

लिये तैयार हों ? बहुत सी कान्फ्रेंस और बहुत से प्रस्ताव आज होते हैं—परन्तु कितने हृदयों में उस '**प्राचीनमंत्र**' आत्मसमर्पण का प्रोत्साहन है. यजुर्वेद इस 'जीवन' को 'समर्पण' रूप बतलाता है और समर्पण के साथ उस 'समर्पण के देवता' की पूजा करने का विधान करता है. एक बात का मुझे निश्चय है, भारतवर्ष रूढ़ियुक्त वाद विवादों से नहीं और न कागज़ के शर्त्तनामों से अपितु 'आत्मसमर्पण' के द्वारा महान् बन सकेगा, भारत का भावी इतिहास इसी की प्रतीक्षा कर रहा है !

त्रिगुण सूत्र

एक सिन्धी किम्बदन्ती है:—'सच्ची महान आत्मायें छिपे हुये मनुष्यों में पाई जाती हैं' परन्तु उनके अन्दर की सच्चाई बहुत देर छिपी नहीं रहती. यह शनैः २ दूसरों पर प्रकट होती है. गेटे ने कहा है:—

> 'वस्तुतः महान्, सच्चे, उच्च, पुरुष अपना मार्ग मौन से ही निकाल लेते हैं.'

ऋषि दयानन्द के जीवन और सन्देश की सच्चाई उसके देश वासियों पर प्रकट होती जाती है. मेरा विश्वास है कि आगामी दिनों में यह और भी अधिक प्रकट होगी. मुझे हर्ष हुआ कि अभी हाल में लण्डन में हुई धार्मिक कान्फरेंन्स के समय एक ईसाई शिष्य ने उच्च प्रशंसा के भाव दयानन्द के विषय में प्रकट किये थे. गत वर्ष दिवाली के अवसर पर लण्डन की एक सभा मे ऋषिके स्मृति में प्रशंसा पूर्ण उद्गार निकले थे. कुछ दिन हुये कि जञ्जीबार (पूर्वअफ्रीका) से आये एक व्यक्ति ने मुझे बतलाया कि वहां के स्त्री पुरुषों की बड़ी संख्या पर दयानन्द का गहरा प्रभाव है. मैं उसकी जीवनी में एक त्रिगुण सूत्र (तीन तार का धागा) फैला हुआ देखता हूं वह 'ऋषि' 'योगी' और 'कर्मवीर' है. मैं जब उसके चित्र को देखता हूं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह मानों अपने देश

और प्राचीन इतिहास की पुकारों को सुन रहा है! कोई प्रेरणा उसे घर से बाहर निकालती है, बहुत वर्षों तक इधर उधर घुमाती है और अन्त में वह 'प्रज्ञाचक्षु सन्यासी' के पास आता है और उनका आशीर्वाद पाकर अपने मिशन पर चल देता है. वह अपने जीवन में तपस्या किये बिना अपने 'मिशन' पर नहीं निकलता. एक 'तपस्वी' ही को 'मनुष्यों के शिक्षक' बनने का अधिकार है. क्या अर्वाचीन भारत में दयानन्द से बढ़ कर कोई तपस्वी हुआ है ?

दयानन्द की जङ्गलों और पहाड़ की चोटियों पर घूमने की रोमाञ्चकारी कथा है! उसका कुछ अंश उन ने हमें अपने 'आत्मचरित'में बतलाया है. इन भ्रमणोंमें दयानन्द का उद्देश्य केवल धर्मसम्बन्धी दर्शनशास्त्र का अध्ययन करना न था किन्तु योगविद्या को सीखना था. मैं दयानन्द को केवल "शोधक ही नहीं समझता प्रत्युत योगी भी मानता हूं. वर्षों की खोज और कष्टोंके पश्चात् नर्मदाके किनारे पर दयानन्द को सच्चे योगी मिलते हैं जिन्हें वह 'दीक्षित' योग विद्या में निपुण कहता है. 'चाणोदा कन्याली' में उसे वे साधु मिलते हैं जो 'योगानन्द' नामसे प्रसिद्ध थे. उनके विषय में दयानन्द कहते हैं कि वे 'योगविद्या में पारङ्गत' थे. वे आत्मचरित में लिखते हैं कि "इनके पास मैं एक विद्यार्थी के रूप मे गया और उन से मैंने योगविद्या के सिद्धान्त और कुछ क्रियाएं भी सीखीं" दयानन्द को चाणोदा में दो और योगी भी मिले जिनका नाम ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि था. वे कहते हैं कि उनके पास मैंने योग का अभ्यास किया और

हम तीनों 'उच्च योगविद्या' के विषय में बहुत सा विचार करते थे. अन्त में वे चले गये और उनके कथनानुसार एक मास के पश्चात् मैं उन्हें मिलने अहमदाबाद के समीप दुधेश्वर मन्दिर में गया, जहां कि उन ने मुझे योगविद्या के अन्तिम रहस्य और क्रियायें बताने की प्रतिज्ञा की थी. उन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, मैं इस महान् विद्या के क्रियात्मक भाग के ज्ञान के लिये उन का ऋणी हूं. इस के बाद मुझे पता चला कि अब तक मुझे जो योगी मिले हैं उन से भी बड़े योगी—परन्तु सब से बड़े वे भी नहीं—राजपूताने के आबू पहाड़ की चोटियों पर हैं. मैं आबूपहाड़ की ओर 'अर्बदा भवानी' आदि प्रसिद्ध पवित्र स्थानों को देखने के लिये चल पड़ा और वे लोग जिन को मैं तलाश में था अन्ततः मुझे भवानीगिरि पर मिले और उन से मैंने बहुत सी योग की क्रियायें सीखीं." जोशीमठ में भी उन्हें कुछ योगी मिले जिनसे उनने योगविद्या सीखी।

बहुधा समझा जाता है कि दयानन्द का जीवन केवल प्रचार यात्राओं और सार्वजनिक शास्त्रार्थों का जीवन है. मेरा विश्वास है कि उसका जीवन यथार्थ में **'तपस्या'** और **'योग'** का जीवन था. उसके १८ वर्ष के महान् कार्य के लिये—और उस के जीवन के १८ वर्ष अत्यन्त कर्मण्यता से भरपूर हैं—शक्ति उस को **वैराग्य अभ्यास** और **तप** से प्राप्त हुई थी जो कि योग के मुख्य अङ्ग हैं. गुरु से आशीर्वाद पाकर वह प्रचार के लिये निकलते हैं. चार वर्ष के पश्चात् वह फिर 'एकान्त वास' करते है. वह गङ्गा के

किनारे उच्च जीवन प्राप्त करने और समाधि लगाने के लिये फिर एकान्त बास करते हैं. वहां पर उनका अद्भुत जीवन है ! कोई कपड़े नहीं, केवल एक लंगोटी तन पर है; शिशिर ऋतु की ठण्डी हवा बह रही है, पर कोई बिस्तर नहीं. वह रेती पर सोते हैं, उपवास करते हैं, प्रार्थना करतेहैं, और समाधि लगाते हैं. यहआदित्य 'ब्रह्मचारी' अहिंसा 'सत्य' अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच यमों तथा नियमों का पालन करता हुआ एकान्तमें योगाभ्यास करताहै

हे एकान्त किसने तुम्हारा गान गाया है ?
किसने तुम्हारे मधुर स्वर को जांना है ?
केवल नग्न आत्मा ने तुम्हें गाया !
केवल नग्न आत्मा ने तुम्हारे लावण्य का रस पान किया है

यह एकान्त समय की तपस्या और ध्यानही है जिससे मनुष्य सचमुच उस 'उस छिपे हुये परमेश्वर' से सहयोग प्राप्त करता है जिससे जीवन का सौन्दर्य तथा शक्ति बढ़ती है. रेवरेण्ड टी० जे० स्काट (क्रिश्चियन मिशनरी) ने उस योग के समय में नदी के किनारे रहने वाले दयानन्द का सुन्दर चित्र खींचा है. स्काट लिखते हैं:——

"मध्यान्होत्तर मैंने जल के पास रेत में पड़े हुये एक फ़कीर को देखा जिस की पवित्रता और विद्याके विषय में मैंने बाज़ार में मनुष्यों की भीड़ में सुना था. मैंने उन को

छोटी सी फूंस की झोंपड़ी में बैठे हुये पाया. वे बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे. उनका शरीर हरक्यूलस के समान बृहत्काय वाला शिर विस्तारयुक्त और सुन्दर, तथा परोपकार पूर्ण चेहरा था. वे लगभग बिलकुल नग्न थे और वे एक साथ मनोहर बात चीतमें लगगये. मैंने उनको उन साधुओंकी श्रेणी में पायो जिन्होंने सर्वथा संसार को त्याग दिया हो और जो ईश्वर के संतत ध्यान में रहते हों. बात चीत से पता लगा कि वे बुद्धिमान् और हिन्दुओं की प्राचीन विद्या के पूर्ण पण्डित हैं. वे केवल संस्कृत ही बोलते थे और हमारी बातचीत एक दुभाषियें के द्वारा होती थी."

दयानन्द, एक महान् योगी था! मुझे डर है कि बहुत से आर्यसमाजी भी दयानन्दको इस रूपमें नहीं देखते. हिन्दुओं का अधिकांश भाग 'उन्हें मूर्त्तिभञ्जक' अथवा अलगरअधिक से अधिक उन्हें एक 'संशोधक' के रूप में देखता है. मेरा विश्वास है कि दयानन्द ने योग विद्या का अध्ययन किया था. एक दिन उन के पास एक शिक्षित युवक आया जिसे योग की शक्ति में विश्वास न था.—

वह पूछता है 'स्वामी जी क्या आप का योग की सिद्धियों में विश्वास है' ? दयानन्द का उत्तर सारगर्भित है:— 'क्या मेरा कार्य इसका साक्षी नहीं' ? एक मनुष्य उन से पूछता है कि "क्या पतञ्जलि के दर्शन में जो योगसिद्धियें लिखी हैं वे विश्वासनीय हैं'? दयानन्द उत्तर देता है "तुम्हारी शङ्का बुद्धिपूर्वक नहीं है. योग का प्रत्येक अक्षर सत्य है. योग कोई पुराण नहीं प्रत्युत वह एक शास्त्र है जोकि क्रिया युक्त आत्मा

त्मिक अनुभव से बनकर एक विद्या के रूप में संग्रथित हुआ है". १८८० के दिसम्बर के थियासोफिस्ट के अङ्क में स्वामी दयानन्द, कर्नल आलकाट और मैडम ब्लैवटस्की के बीच हुये एक बड़े रोचक वार्त्तालाप का उल्लेख है जो कि मेरठ में हुआ था. इनके कुछ प्रश्नों के उत्तरों से दयानन्द के योगविद्या-विषयक विचार प्रकट होते हैं. दयानन्द ने कहा कि एक सच्चा योगी अपने सहयोगी दूसरे योगी के साथ बिना किसी तार पोस्ट आदि बाह्य साधन के विचारपरिवर्त्तन कर सकता है एक योगी दूसरों के मन की बातों को जान सकता है. परन्तु ऋषि ने ठीक बतलाया कि योगी एक "जादूगर" नहीं है. योग प्रकृति के नियमों का विरोध नहीं प्रत्युत वह तो प्रकृति के नियमों के वास्तविक अध्ययन पर निर्भर है और न सच्चा योग वाह्यवस्तुओं का है इसे दयानन्द ने 'व्यवहारविद्या' कहा है. इसमें और योगविद्यामें अन्तर है साथ ही उच्च योग अर्थात् 'राजयोग' का हठयोग से भी भेद करना चाहिये. हठयोग जिसका सम्बन्ध आसन और प्राणायाम से है शरीर का व्यायाम है. राजयोग का मन से सम्बन्ध है अर्थात् 'प्रत्याहार'* 'धारणा' और 'ध्यान' * से, यह मन का सुधार करता है और आत्मिक शक्ति को उभारता है. राजयोग के

---

* यह प्रत्याहार आदि शब्द, योग के हैं जिन का अर्थ क्रमशः इस प्रकार है:—

प्रत्याहार—इन्द्रियों का सब बाह्य विषयों से हटाना.

धारणा—किसी विषय में चित्तको लगा देना.

ध्यान—जिस विषय 'धारणा' की है उसी में उस का एकाग्र हो जाना. अनुवादक.

जिसकी पराकाष्ठा समाधि है, बहुत से नियम हैं. योग की दीक्षा (विद्या में प्रवेश) पाने के लिये, ऋषि दयानन्द भाष्यभूमिका में लिखते हैं कि, मनुष्य को आवश्यक है कि नियमों के अनुसार चले. 'ब्रह्मचर्य' या पवित्रता एक मुख्य नियम है. दूसरा नियम है शुद्ध और बलवान् मन होने का. योग निर्बल मस्तिष्क वालों के लिये नहीं है. योग के लिये 'इन्द्रियजय' 'एकाग्रता' और 'ध्यान' की आवश्यकता है. एक तीसरा नियम मेरी समझ में 'निर्भयता' है. जहां भय है वहां योग नहीं रह सकता. दयानन्द का यह कथन वास्तव में ठीक है कि—"योग सब विद्याओं में कठिन है और इस समय बहुत कम लोग उस के सीखने के लायक हैं" निस्सन्देह बहुत कम; क्योंकि हमारे आधुनिक जीवन में चित्त-वृत्तियों का विक्षेप (इधर उधर फैलना) और उत्तेजना होती रहती है. अधिकांश लोगों के लिये उन का 'कर्त्तव्य' ही योग की शिक्षा है. उन को पहिले अपने कर्त्तव्य को ध्यान और सत्य के साथ करना सीखना चाहिये फिर वे दूसरे योग साधनों के योग्य हो सकते हैं. इसलिये 'स्वाध्याय' और 'समाज सेवा' की आवश्यकता है. एक से मन की एकाग्रता और अतएव शुद्धि होती है और दूसरे से 'प्रेम' उभरता है, इसलिये हृदय की शुद्धि होती है.

मैंने कहा है कि योग की शक्ति के विकाशके लिये तपस्या आवश्यक है. परन्तु सच्ची तपस्या उस का नाम नहीं है जो झूंठे साधु अपने शरीर को कष्ट पहुंचा कर मूर्ख स्त्री पुरुषों से धनहरण करने के लिये करते हैं. दयानन्द की तपस्या

एक साधारण वैरागी की तपस्या के समान न थी जो अपनी आत्मा को कारागार में बन्द करता है और बन्धनों से जकड़ देता है. दयानन्द की तपस्या 'डायोजिनीस' के समान एक मनुष्य द्वेषी * (Cynic) की भी न थी. परन्तु वह तपस्या एक मनुष्य जाति के प्रेमी की थी. जिसका हृदय आशावाद से अत्यन्त भरपूर था. उसका 'नाम **दयानन्द** 'बिना कारण के नहीं है. 'आनन्द' शब्द का अर्थ हर्ष है और वह ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में बतलाता है "आनन्द की उपस्थिति में ही विद्या (सरस्वती) का निवास होता है" 'सरस्वती' (विद्या) सन्देहवादी या मनुष्य द्वेषी के लिये नहीं है. विद्या उसी को फलती है जिस के हृदय में आनन्द है. दयानन्द की तपस्या एक मनुष्य तत्त्वज्ञ (Humanist) की तपस्या है. इसका उद्देश्य उसे मनुष्य जाति की सेवा करने के लिये पवित्र, संयमयुक्त, और बलवान् बनाना था. उसकी तपस्या ने उसके मन और शरीर दोनों की शक्ति को बढ़ाया था.

लोग 'दयानन्द' पर आश्चर्य करते हैं कि वह गङ्गा के किनारे केवल एक लंगोटी धारण किये सरदी और धूप में बैठा रहता था. वे भूल जाते हैं कि उस ने आत्मसंयम से अपने शरीर को चट्टान के समान दृढ़ बना लिया था. आज

*पाश्चात्य यूनानी दर्शन में एक 'सिनिक' (Cynic) सम्प्रदाय था. ये लोग मनुष्य मात्र से घृणा करते हुये कहते थे कि मनुष्य समाज से बिलकुल अलग रहना चाहिये.

अनुवादक

हम उन के मार्ग की बुद्धिमत्ता का अनुभव करने हैं. क्योंकि आज कल हम 'सूर्यताप से इलाज' (Heliotherapy) की बात सुनते हैं. आज पश्चिम चिकित्सा विज्ञान ने इस बात का अनुभव करना प्रारम्भ किया है कि अधिक वस्त्र न केवल स्वास्थ्य के लिये अनावश्यक ही हैं प्रत्युत हानिकारक हैं. आज हमें कपड़ोंकी एक नयी फिलासफी वह बात सिखला रहीहै जिसे एक पीढ़ी पूर्व दयानन्द ने उपदेश और उदाहरण द्वारा बतलाया था कि तपस्या शरीर को दृढ़ बनाती है और जीवन के दो सबसे बहुमूल्य ख़ज़ाने **स्वास्थ्य** और **बल** सूर्य की धूप तथा खुली वायु से प्राप्त होते हैं.

दयानन्द की महत्ता एक कर्मवीर के रूप में भी है. इस ब्राह्मण के अन्दर जो सन्यासी हो जाता है क्षत्रिय (युद्धशील) आत्मा वास कर रही है. वह एक बड़ा योद्धा है. 'कट्टरता' के विरुद्ध वह कैसा घोर संग्राम करता है! अहिंसा शान्ति, या सहिष्णुता का अर्थ 'असत्य' या 'ग़लती' से मेल नहीं हो सकता. मैं कभी २ सोचता हूं कि अहिंसा को पूरा करने वाली दूसरी सच्चाई **'प्रतिरोध'** है. 'जीसस के विषय में हम पढ़ते हैं कि एक अफ़सर ने जो पास खड़ा हुआ था अपने हाथ से जीसस को चोट लगा कर कहा कि 'तुम बड़े धर्मगुरु को इस प्रकार क्यों जवाब देते हो ?' जीसस ने उत्तर दिया:—"यदि मैंने 'पाप' की बात कही है तो तुम उसे कहो; पर यदि ठीक कही है तो मुझे क्यों चोट पहुंचाते हो?" 'क्यों चोट पहुंचाते हो' इन शब्दों से जीसस के अन्दर से 'प्रतिरोध' की फ़िलासफ़ी का साक्ष्य मिलता है. दयानन्द

ने उन लोगों से जो बाहर या भीतर से हिन्दू समाज पर आक्रमण कर रहे थे कहा कि 'क्यों मेरी आर्यजाति को चोट पहुंचाते हो ?' दयानन्द उस की सहायता के लिये एक योद्धा की शक्ति के साथ आगे बढ़ता है.

'प्रतिरोध' का तत्त्व गीता के दर्शनशास्त्र में पाया जाता है और इस में उस सच्चाई पर ज़ोर है जिस को मुझे भय है कि कतिपय क्राइस्ट के उपदेश अर्थात् प्रेमके सन्देशके व्याख्याकारों ने भुला दिया है. प्रेम घृणा की अपेक्षा कहीं अधिक सफलता के साथ 'प्रतिरोध' कर सकता है. दयानन्द ने अपनी पूरी शक्ति से उन मिथ्या बातों का प्रतिरोध किया जो हमारे समाज की जीवन शक्ति को नष्ट कर रही थीं. दयानन्द ने एक वीर के समान मद्धयुद्ध किया और दुःखों को झेला. इस दृष्टि से वह लूथर के समान था. परन्तु दयानन्द को 'भारत का लूथर' कहना जैसा कि बहुत से आर्य समाज और युरोपियन समालोचक कहते हैं, ऋषि के साथ पूरा न्याय नहीं करता है. दयानन्द मेरी समझ में अपने जीवन की तपस्या और अपने सन्देश के कारण 'लूथर से' बढ़ कर है. मैं समझता हूं कि हमारे इस युग में किसी दूसरे मनुष्य ने वेदों की महान् सच्चाईयों और उन के सार्वभौम मूल्य का दयानन्द की अपेक्षा अधिक सच्चाई से नहीं देखा.

उनके जीवन की मुख्य आकांक्षा आर्यजाति का नया संगठन करने की थी, और उनका पुनः संगठन का प्रकार 'पश्चिमीपन' की नकल न थी. पश्चिमी सभ्यता की जड़ें

'भोग' से हिल रही हैं. वह ऐन्द्रियिक सुख की सभ्यता है. ऋषि दयानन्द जातीय जीवन को 'विद्या' और 'समर्पण' के नाम पर बनाना चाहता था विद्या अन्धविश्वास को दूर करेगी और विद्यारूपी दीपक में वह चाहता था कि हम तपस्या का तेल डालें. 'विद्या' ही वह प्रकाश है जिससे जाति अन्धकार से निकल सकेगी.

'विद्या' और 'तपस्या' ज्ञान और समर्पण पूर्वक किये काम ही भारत का उद्धार कर सकेंगे. ऐसा ऋषि दयानन्द का विश्वास था. इसका साक्ष्य उनके जीवन से मिलता है क्यों कि यह ऋषि एक 'कर्मयोगी' भी था. बारम्बार वे अपने व्याख्यानों में और अपने वेदभाष्य में वह क्रियानिष्ठ होने और 'कर्म' के महत्व को प्रकट करते हैं. उसकी फिलासफी के अनुसार कर्मनिष्ठा आध्यात्मिकता से अलग नहीं है. वह फिलासफी प्लेटो की थी जो समझता था कि "सब से उच्च अवस्था कर्मरहित शान्त जीवन' से प्राप्त होती है" वैसी ही फिलासफी अरस्तू की थी जो कहता था कि "ईश्वर की दृष्टि में सब काम 'तुच्छ' और 'अयुक्त' है. और 'आचार' की पराकाष्ठा एक प्रकार का 'ध्यान और विचार युक्त जीवनहै.'" ऋषि दयानन्द की फिलासफी उच्चतर प्रकार की है. उसके अनुसारः—आध्यात्मिक जीवन कर्मण्यता में है, धर्म 'कर्म का नाम है—परन्तु वह कर्मण्यता ईश्वर भक्तिके साथ हो,वह कर्म ईश्वर को समर्पित करके किया गया हो.

पुराने धर्मग्रन्थों में किसी 'बोधिसत्व' की कथा आती

है. वह स्वर्ग के द्वार पर खड़ा है. वह 'मुक्ति' में प्रवेश करने को है. ठीक उसी समय पृथ्वी के किसी भाग से एक आवाज़ आती है:—"मैं पीड़ित हो रहा हूं क्या कोई मेरी सहायता न करेगा ?" इस पर बोधिसत्व' पुकार उठता है:—'मुझे मुक्ति या स्वर्ग नहीं चाहिये—मुझे एक भाई या बहिन का दुःख दूर करने के लिये फिर वापिस पृथ्वी पर आना है, ऐसा ही 'बोधिसत्व वह व्यक्ति भी था जिसको हम दयानन्द नाम से पूजा करते हैं. वह अनुभव करता था कि जब तक भारत पुनर्जागृत न हो और आर्यजाति पुनरुज्जीवित न हो, उसे शान्ति नहीं मिल सकती. इस लिये बिना आराम किये कट्टर लोगों के विरोध का मुकाबिला करता हुआ 'आर्य सन्देश' को जो विद्या और कर्म का तथा सर्वोपरि पुरुष की पूजा की घोषणा करता हुआ स्थान स्थान पर जाता है। लोगोंने तुझ पर हे भारत के बोधिसत्व ईंट और पत्थरों की वर्षा की थी. परन्तु आज निस्सन्देह हम तुझे धन्य समझते हैं और तेरे ऊपर अपनी 'श्रद्धा और प्रेम के बसन्त पुष्पों' की वर्षा करते हैं।
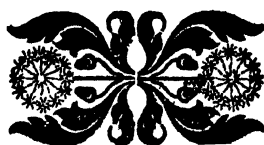
आकार और आदर्श

अपनी खोज में दयानन्द पहाड़ों और गुफाओं में घूमता है. हिमालय में पहुंच कर एक बार जीवन को त्यागने के लिये तैयार हो जाता है. उस समय उसके अन्दर विचार उत्पन्न होता है कि 'सत्यज्ञान' प्राप्त किये बिना मरना ठीक नहीं! लगातार श्रमपूर्ण भ्रमणों और बहुत तपस्या के पश्चात् उसे वह ज्ञान होता है जिसे धर्मपुस्तक उचित रीति पर 'ब्रह्मविद्या' नाम देते हैं, जिस का अर्थ सब देवों के ऊपर एक परमेश्वर का ज्ञान है, और वह इस ज्ञानके प्रकाश को पुनः प्रज्वलित करने के लिये स्थान २ पर जाता है :—

> 'वह एक है, उसे बुद्धिमान् अनेक नामों से पुकारते हैं' 'वह अपनी आन्तरिक शक्ति से जीवन धारण कर रहा है' 'प्रजापते' तुम एक हो, दूसरा तुम्हारे समान कोई नहीं' 'वह इन सब उत्पन्न पदार्थोंके चारों ओर व्याप्त है'*

यह नित्य आत्मा का बोध वैदिक मन्त्रों और उपनिषदों के गीतों में भरा हुआ है. ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त ८६ के एक सुन्दर मन्त्र में ईश्वर को "सदाचार व्यवस्था का रक्षक"

---

*यह सब उद्धृत वाक्य भिन्न २ वेद मन्त्रों के भागों के अनुवाद हैं। अनुवादक—

और-"वह राजा जो इस पृथ्वी और उस विस्तृत आकाश का जिस की सीमायें बहुत दूर हैं, और दोनों समुद्रों का स्वामी है" कहा गया है. "अये इस सुन्दर बूंद में वह छिपा हुआ है" "जो कोई आकाश से परे भाग जावे वह भी उस से बच नहीं सकता" "वह इस सबको थामे हुये है जो इन दोनों लोकों के बीच में है और जो इन से भी परे है, मनुष्यों की आखों के पलक भी उस के गिने हुये हैं" "उसने ऊपर आकाश बनाया पृथ्वी और तारों को फैलाया" इसी प्रकार हम उपनिषदों में पढ़ते हैं:—

तुम्हीं सत्य ब्रह्म हो, तुम्हीं को मैं सत्य ब्रह्म कहूंगा।

केवल आत्मा की पूजा करो. जो आत्माको ही प्रिय समझ कर पूजता है वह उस से कभी अलग न होगा जो उसे प्रिय है. यदि ए मनुष्य दूसरे देवता को पूजता है तोवह अज्ञानी है।

निश्चय से प्रारम्भ में केवल आत्मा ही था. वह द्वितीयरहित केवल एक है.

ब्रह्म को 'अन्तर्यामी'-आन्तरिक आत्मा कहने में भी एक कारण है।

एक वाक्य में जो विचार और गम्भीर आध्यात्मिक आदर्शवाद से युक्त है, हम पाते हैं:——

उस के भय से वायु चलती है ।
उस के भय से सूर्य प्रकाश और गर्मी देता है.
और बादल समय पर बरसते हैं ।
और फूल जंगलों में खिलते हैं ।
महाप्रलय के समय वह 'समय' का भी लोप करदेता है.
वह मृत्यु की भी मृत्यु है ।
वह भय का भी भय है ।
वेदान्त उसे सर्वोच्च देव बतलाता है ।
वेद उसे 'यत् तत्' "जो वह" कहक र पुकारते हैं ।

परन्तु बहुत समय तक हिन्दुओं ने वेदों और उपनिषदों के इस दर्शन से मुख मोड़ रक्खा था, और बहुत समय तक हिन्दुओं ने अपनी मनुष्यशक्ति को खोया. प्राचीन काल का आर्य एक आदर्शवादी था. मुसलमान और ईसाइयों ने हिन्दूधर्म को मूर्त्ति पूजा का दोषी ठहराते हुये उस की यथार्थ प्रतिभा को नहीं समझा. प्राचीन हिन्दू के अन्दर प्रकृति के लिये श्रद्धा थी पर यह श्रद्धा 'प्रकृतिवाद' नहीं है। वैदिक ऋषि प्रकृति की पूजा नहीं करते थे प्रत्युत प्रकृति के भीतर विद्यमान महान् ईश्वर की पूजा करते थे. ऋग्वेद में हम मूर्त्तियों के विषय में कुछ नहीं पाते. सर्वोच्च शक्ति को

'विश्वकर्मा' अर्थात् विश्व का बनाने वाला, 'स्वयम्भूः' स्वयं विद्यमान, स्कम्भ-संसारका आधार, धाता बनाने वाला, और विधाता-भविष्य विधान करने वाला, इत्यादि प्रकार से बतलाया गया है।

दुर्भाग्य से भारत के इतिहास में एक ऐसा समय आया जबकि हिन्दुओं ने अपने बल को-'शक्ति' को नष्ट कर दिया और उन में से बहुतों ने 'आदर्श' से 'आकार' (मूर्त्ति) की ओर हटकर उन रीतिरिवाजोंको प्रचलित किया जिससे जाति कमज़ोर हो गई. 'भूतकाल' की पूजा का अर्थ यह नहीं है कि जीवननाशक रीतियों और सिद्धान्तों पर अड़े रहें प्रत्युत जाति के पुनरुज्जीवन के लिये और उसका बलवान् भविष्य बनाने केलिये उन्हें एक ओर फेंक देना चाहिये।

कुम्भ के मेले का दयानन्द के मन पर गहरा असर पड़ता है. मेला सार्वजनिक प्रचलित हिन्दूधर्म का दर्पण है. यह उसे दुःख से भर देता है, वह 'योगियों' को देखता है,उन योगियों को जिन्हें योग के विषय में कुछ नहीं आता; उन 'निर्मल' साधुओं को जो गन्दे भोगों में लिपटे हुए हैं, उन 'पण्डितों' को जिन्हें धर्मपुस्तकों का ज्ञान नहीं, उन 'पुरोहितों' को जो कपटी हैं और 'मनुष्यों' को जो निर्बल मन और निर्बल सङ्कल्प शक्ति वाले हैं।

ऋषिकेश में एक पण्डित दयानन्द को भोजन के लिये निमन्त्रित करता है. ऋषि वहां के दृश्य से घबड़ा उठते हैं, वे लिखते हैं कि घर के भीतर एक ब्राह्मण मांस काट कर तैयार कर रहा था और अन्दर के भाग में पण्डितों की बड़ी भीड़ थी जिनके आगे मांस के ढेर-बैल का मांस । और जानवरों के मसाले लगे हुए सिर रक्खे हुए थे-ब्राह्मण और पण्डित गोमांस खायें, इस से बढ़ कर ऋषियों की सन्तानों का और क्या पतन हो सकता था ! किसी हिन्दू सम्प्रदाय की धर्मपुस्तकों का वर्णन करते हुये दयानन्द लिखते हैं—उन्हें देखकर मैं बिलकुल कांप उठा ! उनमें माता, कन्या, बहिन और चमार जाति की अथवा भङ्गी आदि अन्य छोटी जाति की स्त्रियों से सम्बन्ध भी निषिद्ध नहीं है और नग्न अवस्था में पूजा की जाती है. मद्यपान, मछली, मांस, और मुद्रा (गन्दी मूर्तियों का प्रदर्शन) आदि विधान ब्राह्मण से लेकर छोटी जाति तक के लिये हैं.यह बात प्रकट रूप से कही गई है कि पांचों 'मकार' अर्थात् मद्य, मांस, मैथुन आदि मुक्ति के साधन हैं ! हिन्दू धर्म बहुत पतित अवस्था में चला गया था !!

जो लोग दयानन्द पर हिन्दू धर्म के प्रति कठोर होने का दोष लगाते हैं, यह नहीं समझते कि उन दिनों में वह सुन्दर प्राचीन धर्म कितना अन्धविश्वास में जकड़ा हुआ था. दयानन्द ने अनुभव किया कि इस का विरोध करना उस का धर्म है. मैं स्वीकार करता हूं कि दयानन्द के समय के सार्वजनिक हिन्दू धर्म के पतन के वर्णन पर मैं स्वयं हैरान हूं ।

(१) मैं कुछ उदाहरण देना चाहता हूं 'बाकाबाई' नागपुर के अन्तिम भोसले राजा की विधवा थी. उसने १८५७ के गदर में अंग्रेजों की बहुत सहायता की थी. वह एक धर्मात्मा स्त्री समझी जाती थी; वह पुरोहितों और साधुओं के अतिरिक्त जिन्हें राजा पालता था प्रतिदिन १५ ब्राह्मणों और इस से दूने गुसाइयों को खिलाती थी!

(२) बनारस के राजा ने एक दिन १८० मन तोल का दूध, सुवर्ण की गाय और एक चांदी का बैल गङ्गा को अर्पण कर दिया!

(३) बम्बईमें महाराजा पापमय जीवन व्यतीत करते थे. फिर भी वे देवताके अवतार माने जाते थे. उनके भक्त बड़े हर्ष पूर्वक पानी को पीतेथे जो उनके स्नान से बच रहताथा. वे उन के भोजन के उच्छिष्ट को खाने में भी बड़ा गौरव समझते थे. १८६२ ई० में छपे एक वर्णन में मैने पढ़ा कि "जब एक मनुष्य मरता है तो महाराजा उस के पाप दूर करने के लिये अपना पैर उस की छाती पर रखता है और अपने इस 'आशीर्वाद' के बदले १०) रु० से लेकर १०००) रु० तक पाता है किन्हीं२ अवसरों पर सम्पन्न घरानों की हिन्दू स्त्रियों उस देवालय में प्रवेश करती हैं. वह एक बड़े पालने में स्त्रियों की लोरी के साथ नींद लेता है और उस समय स्त्रियें पुरोहितनें होती हैं. इस पद का मिलना बड़ा गौरवास्पद समझा जाता है यदि किसी स्त्री की ओर महाराज मुस्करा देते हैं तो सम्बंधी और पड़ोसी इसके गौरव बड़ी ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखते हैं और इस सम्मान को संसार की सब से अधिक अभिलषणीय

वस्तु समझते हैं. पर यह सारी पूजा उस मनुष्यकी की जाती है जो सामान्य जनश्रुति के अनुसार एक पापपूर्ण राक्षस है।

(४) एक स्थान पर यह प्रथा थी कि स्त्री पुरुषोंको उनकी पीठ में लगे हुये हुकों (hooks=मुड़ी हुई कील) पर लटकाते थे और उन्हें झुलाते हुये देवता को प्रसन्न करने के लिये मन्दिर ले जाते थे. एक स्वयं आंख से देखने वाला लिखता है:—मुझे दुःख है कि गतवर्षके अन्तमें मैंने नागपुरमें आठ या बारह स्त्री पुरुषों को हुकों पर लटकते हुये देखा और वह दृश्य ब्रिटिश कमिश्नर के निवासस्थान से बन्दूक की आवाज़ के भीतर ही था, वे एक लम्बी शलाका में लटक रहे थे जो एक बैलगाड़ी में खड़े किये बाँस पर इस प्रकार लगायी गयी थी कि चारों ओर को घूमती थीं वे लोग हुकों पर लटके हुये सारे रास्ते झूलते गये और बीस हज़ार मनुष्यों की भीड़ तालियां बजाती हुयी' उन्हें घेरे हुये थी।

(५) गत सदी के साठ के वर्ष उपरान्त के दस वर्षों के 'friend of India' (यह कोई 'पत्र' प्रतीत होता है— अनुवादक) में एक रिपोर्ट है कि मछलीपट्टम में एक दंगा हुआ जो कि 'जाति' के कारण था. उस दंगे का कारण निम्न शब्दों में दिया गया है:—"नगर के सुनारों ने अपने मकानों पर कलई कराने और द्वारों पर मालायें टांगने का निश्चय किया परन्तु ऊंची जाति के लोगो ने इसका विरोध किया. इन ऊंची जाति के लोगों को सुनारों के मकानों में कलई करने के पाप पर इतना क्रोध आया कि एक बड़ा दंगा होगया

जिस से कि नगर में हड़ताल रही—दो दिन तक कोई दुकान नहीं खुली.

(६) 'सती' के विषय में अन्धविश्वास अब तक बाकी था. यहां एक घटना अङ्कित की जाती है जो १८६१ में अवध में हुई:—

एक स्त्री जो सती होना चाहती थी ५० वर्ष की थी. जब उसने सती होने का विचार प्रकट किया तो ग्राम के किसी आदमी ने रोकने का यत्न नहीं किया. जिस दिन कि घर के आगे चिता तैयार की गयी. स्त्री मध्यान्होत्तर स्नान और शृङ्गार करा के बाहर लायी गयी. उस समय ५०० मनुष्य एकत्रित थे. कुछ ने रोकने का यत्न भी किया पर उन्हें दबा दिया गया. स्त्री चिता पर चढ़ी और घी की एक बड़ी परात उसके पास लायी गयी. उसने अपने हाथ, पैर, और शरीर पर घी लगाया और शेष चिता पर डाल दिया. जिस समय वह लोगों को आशीर्वाद दे रही थी और उनके 'मङ्गल' के लिये प्रार्थना कर रही थी, उसने एक स्त्री को चिता में आग लगाने का इशारा किया. आस पास के लोगों ने कोई ज़बरदस्ती नहीं की थी पर वे सब घास और अन्न के पौधे अग्नि में डालते थे.

श्री केशवचन्द्र सेन ने अपनी ज्वलन्त भाषा में उस समय की दशा का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है वे लिखते हैं:—

अपनी ओर देखो! रीति रिवाज़ों से जकड़े हुये और स्वाधीनता रहित! तुम्हारी उच्च बुद्धि और उच्च

भावों का रूढ़ि के बोझ ने गला घोट रक्खा है !
अपने घरों की ओर देखो ! तुम्हारी स्त्रियें, बहने, मातायें, पुत्रियें, 'ज़नाने' के अन्धेरे कारागारमें कैद हैं!

अपनी सामाजिक रीतियों और प्रथाओं को देखो. अपना दैनिक जीवन देखो जिस में प्रत्येक पग पर तुम्हें अपने 'अन्तः करण' की आवाज़ को दबाना पड़ता है और 'कपट' के लिये प्रवृत्त होना पड़ता है. और तुम्हारी उन्नति और सच्चे सुख में कोई न कोई बाधा उपस्थित है !

अपने अनुभव से बतलाओ कि क्या तुम जीवन के प्रत्येक भाग में ऐसी रीतियों से नहीं घिरे हुये हो जिन्हें तुम केवल घृणा की दृष्टि से देख सकते हो और क्या पुरोहितों का राज्य जिस के नीचे तुम्हें रहना पड़ता है एक बहुत निकृष्ट और गन्दा अत्याचार नहीं है जो शरीर को पीड़ा पहुंचाता है, मन के लिये हानि कारक है और आत्मा का घातक है ?

क्या ऐसे रीतिरिवाज़ तुम्हारे गले में नहीं जुते हुये हैं जिन पर तुम लज्जित हो और जो कहने की आवश्यकता नहीं कि 'बुद्धि' केलियेकलङ्करूप हैं ? और उस पाप और दुःख को जो धार्मिक सामाजिक, और शारीरिक प्रकार से हो रहा है, मिला कर सोचने से क्या तुम बहुधा अपने और अपने देश के दुर्भाग्य पर रोते नहीं हो ?

कपिल और कणाद के सन्तानों की ऐसी दयानीय दशा ! वे तूफ़ान के अनाथों की तरह मारे २ फिरते हैं ! दयानन्द अपने हृदय में 'भूतकालीन भारत का चित्र' देखता है जब कि वह संसार की जातियों का नेता था. वह अपनी आंखों से भारत को बन्धनों में जकड़ा हुआ देखता है और इस दृश्य पर उसके आंखों में वीरोचित आंसू भर आते हैं ! वह हिन्दू जाति के उद्धार करने के मिशन पर चलने से पूर्व और अधिक 'तपस्या' करता है.

दयानन्द जानता है कि भारत बहुतों की पूजा करने से निर्बल हो गया है ! वह समझता है कि भारत की उन्नति के लिये 'एकता' अत्यन्त आवश्यक है 'एक ईश्वर की ओर आओ' यही उसकी लगातार पुकार है एक वेद मन्त्र की व्याख्या करते हुये वे लिखते हैं:—यह अवश्यक है कि अपनी इच्छाओं की पूर्त्ति के लिये परमेश्वर की जो सृष्टि का रचने हारा और आधार है, पूजा की जावे.

फिर एक दूसरे वेदमन्त्र का अर्थ करते हुये वे लिखते हैं:-

जो पिता के समान सारे संसार को पालने वाला है वह एक ईश्वर है.

एक और दूसरे मन्त्र की व्याख्या भी बड़ी सारगर्भित है "बुद्धिमान योगी लोग ईश्वर की पूजा करने वाले, अपने मन को सम्मिलन चाहते हुये उस परमेश्वर में लगाते हैं जिस ने

इस संसार को बनाया है और जो जीवों के बुरे भले कर्मों का साक्षी है और सब प्राणियों को जानता है. वह द्वितीयरहित एक है, सर्वत्र व्यापक है और साक्षात् ज्ञान स्वरूप है. उस से बढ़ कर कोई नहीं है. उस विश्व के प्रकाश और स्रष्टा की सब से बढ़ कर स्तुति सब मनुष्यों को प्रत्येक दशा में करनी चाहिये. इसी प्रकार जीव उसे प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे.

पुरोहितों की 'मूर्ति' और जात पांत की 'मूर्ति' को तोड़ने के लिये वह निकल पड़ता है. भागलपुर में एक बनिया ऋषि के लिये दूध और चावल लाता है. बनिये का इसमें यह उद्देश्य है कि 'सन्यासी' की पूजा से उसे पुत्र प्राप्त होगा. तीसरे दिन दयानन्द को बनिये का भाव पता लगता है और वह यह कहकर भोजन लेना अस्वीकार करता है कि "मैं ऐसे भाव से दी गई भिक्षा नहीं लेना चाहता, मैं ईश्वर नहीं हूं जो तुम्हें पुत्र दे सकूं" एक ब्राह्मण ने ऋषि से पूछा कि क्या जातियों का भेद है ? इस पर वे अपनी स्वाभाविक विनोद पूर्ण भाषा में उत्तर देते हैं:—मनुष्य, पशु और पक्षी तीन जातियें हैं. परन्तु शायद तुम्हारा तात्पर्य वर्णों से है. हां बहुत से वर्ण हैं, और फिर वह वर्णों की इस प्रकार व्याख्या करता है:—'ब्राह्मण' वह है जो वेदों को जानता है और पूर्ण पण्डित है. 'क्षत्रिय' वह है जो अपने देश की रक्षा करना जानता है. 'वैश्य' वह है जो व्यापार करता है और 'शूद्र' मूर्ख का नाम है. वह बारम्बार मूर्ख ब्राह्मणों की हास्यजनक दशा प्रकट करता है और उनसे कहता है कि 'खीर पूरी को

छोड़ कर विद्या प्राप्ति का यत्न करो', एक पण्डित पूछता है कि "आपने देशमें इतना कोलाहल क्यों मचाया है" ? उसे वे उत्तर देते हैं क्योंकि पण्डितों ने धोखे का जाल फैला रक्खा है और वे सत्य से बहुत दूर चले गये हैं"

क्या कोई इस बात का खण्डन कर सकता है कि प्राचीन आर्य न मूर्त्ति पूजा करते थे और न 'जाति' को मानते थे ? दयानन्द की हरद्वार और बनारस के व्याख्यान में मुख्य बात यही है कि क्या 'वेदों में मूर्त्ति पूजा' है ? इस बात को सिद्ध करने में कि वेदों में मूर्त्ति पूजा बिलकुल नहीं उस ने एक बड़ा काम किया-इस प्रकार उसने जाति के भीतर नया गौरव भर दिया. प्राचीन आर्य 'आकार पूजक' नहीं प्रत्युत 'आदर्श पूजक' थे। उसके सार्वभौम विचार थे न कि साम्प्रदयिक। उसने जो आर्य नहीं थे उन्हें भी आर्यसंगठनमें मिलाने का प्रयत्न किया. प्राचीन समय में 'व्रात्य'मेंलोग जोआर्य नहीं थे, किन्तु आदिम निवासी या विदेशी थे वे भी 'आर्य भ्रातृसंघ' में मिला लिये गये थे। इसी प्रकार पिछले समय में 'श्री हरिदास' जैसे मुसलमानों को वैष्णव सम्प्रदाय में ले लिया गया था आज के दिन भी ब्राह्मण गङ्गा की स्तुति के वे गीत गाते हैं जो कि मुसलमानों से हिन्दू बने हुये एक

व्यक्ति के बनाये हैं* । प्राचीन आर्यों का आदर्श जाति भेद नहीं था प्रत्युत भ्रातृभाव था ।

उन लोगों के पास जो अन्ध विश्वास में डूबे हुये हैं दयानन्द ईश्वर का 'रक्षा-सन्देश' लेकर आता है. एक 'शिवदयाल' नामक पुजारी पूछता है 'मुझे ईश्वर का नाम बतलाओ'। दयानन्द उत्तर देते हैं:—"**सत्, चित्, आनन्द** बस इतना याद रक्खो और कुछ ज़रुरत नहीं" एक अंग्रेज उन से पूछता है कि वे किस धर्म का प्रचार करना चाहते हैं? वे उत्तर देते हैं कि "मैं चाहता हूं मनुष्य 'एक ईश्वर' की पूजा करें वैदिक नियमों पर चले और धर्माचरण करें"

यह आश्चर्य है कि ऐसे 'धर्म' के प्रचार के लिये लोगों ने दयानन्दको सताया. *मिसरके 'चित्रलेख' (Hieroglyphs) जो अभी हाल में पढ़े गये हैं बतलाते हैं कि प्राचीन मिस्र में एक राजा हुआ जिसने कहा "केवल एक ही परमेश्वर है.

---

*ऐसा प्रतीतहोताहै कि लेखकका प० जगन्नाथको 'गङ्गालहरी' की ओर सङ्केत है। वे भ्रष्ट होने के कारण मुसलमान समझे गये थे पर पीछे पण्डितों ने उन्हें शुद्ध कर लिया ।

* मिसर की पुरानी भाषा 'चित्रमय' थी इसे चित्र-भाषा कहते हैं. विद्वानों ने बड़े परिश्रम से इस भाषा को पढ़ा है

तुम छोटे २ देवताओं की क्यों पूजा करते हो ?" पुरोहितों ने उस को धर्मविरोधी राजा बतलाया और जनसमूह ने उस की राजधानी में उपद्रव किये. क्या दयानन्द के साथ 'एक ईश्वर' के सन्देश देने के लिये यही व्यवहार नहीं किया गया? मैक्समूलर को लिखे एक पत्र में ऋषि लिखते हैं कि "मेरे देशवासी मुझे अब भी नास्तिक कहते हैं" ठीक इसी प्रकार एथेन्स के लोगों ने 'सुकरात' को भी नास्तिक कहा था। उसने भी बलवान् शक्तियों पर आक्रमण किया था। 'ईश्वरीय दूतों' को अनेक बार 'नास्तिक' की उपाधि मिली है। दयानन्द को 'एक ईश्वर की पूजा' का उपदेश करने के कारण गालियें मिलती हैं। इन गालियों का जवाब यही है कि वह और भी अधिक प्रचार करता है। वे लिखते हैं 'मुझे हर्ष है कि लोग 'ईश्वर भक्ति' के प्रचार के कारण मुझे गालियें देते हैं' वे उस के ऊपर ईंटे फेंकते हैं पर उस का उत्तर 'क्षमा' है. एक सभा में 'राम कृष्ण' नामक मनुष्य उस पर ढेला फेंकता है और पुलिस उसे पकड़ लेती है. दयानन्द यह कहकर कि 'मैंने क्षमा कर दिया' उसे छुड़ा देता है, बनारस में एक धार्मिक शास्त्रार्थ में उसके ऊपर 'धर्मविरोध' करने के नाम पर ढेलों की बौछार पड़ती हैं! अनेक बार उसे ज़हर देने का यत्न किया जाता है परन्तु प्रत्येक आततायी के लिये उसका उत्तर है:—'जाओ फिर पाप न करना' एक ब्राह्मण उसे पान में मिला कर ज़हर देता है एक मुसलमान तहसीलदार मि० सैयद मुहम्मद को सूचना मिलती है और वे घातक को

पकड़ लेते हैं। परन्तु दयानन्द उसको ओर से बीच में पड़ कर तहसीलदार से कहते हैं "मैं लोगों को कैद कराने नहीं किन्तु क़ैद से छुड़ाने आया हूं" एक मनुष्य उनके पास खाने को कुछ मिठाई लाता है. वे उसको कहते हैं कि इस में से थोड़ी तुम भी खाओ वह स्वयं खाने से इन्कार करता है। ऋषि दयानन्द लाला सुन्दर लाल और दूसरे लोगों से जो वहां बैठे थे, कहते हैं:— 'देखो यह मनुष्य मिठाई में 'विष' मिला के लाया है। लाला सुन्दर लाल एक साथी से पुलिस बुलाने को कहते हैं। ऋषि दयानन्द कहते हैं कि "नहीं पुलिस मत बुलाओ, इस मनुष्य के मुख को देखो, वह पहिले ही अधमरा हो चुका है। इस के लिये यही पर्याप्त दण्ड है" फिर घातक से वे कहते हैं 'जाओ फिर पाप न करना।

लोगों के सताने से दयानन्द अपने मिशनके प्रचारमें और भी अधिक उत्सुक हो जाते हैं. दयानन्द निर्भय है. बनारस में उन्हें गालियें मिलती हैं. और पत्थर पड़ते हैं. वे उदास नहीं होते वे सात बार बनारस आते हैं—सन्१८५६ में, फिर १८६१ में, फिर १८७० में, फिर १८७२ में, फिर १८७४ में, फिर १८७६ और फिर एक बार और १८७९ में, प्रत्येक बार वे वहां जाकर शास्त्रार्थ का खुला चैलेञ्ज देतेहैं कि क्या'वेदोंमें मूर्त्तिपूजा है'? वे जानतेहैं कि उनके विरुद्ध बहुत बड़ी शक्तियेंहैं-परन्तु जो ईश्वर के साथ है वही अधिक बलवान है। एक पण्डित उनके पास आकर कहता है:—"आज शास्त्राथ के समय बड़ी भीड़ होगी यदि यह शास्त्रार्थ फ़र्रुख़ाबाद में होता तो दस बीस आप को और यहां तक कि जिसे कुछ लोग'शान्ति' कहते हैं, उस से भी ऊपर रक्खा। 'वीरों का मार्ग' सर्व प्रियता का मार्ग

तरफ़ भी होते। पर यह काशी है। मुझे सन्देह है कि आपके पक्ष में कोई एक भी होगा। और काशी गुणों के लिये प्रसिद्ध है'' उस पण्डित को ऋषि उत्तर देते हैं:—''योगियों को पता है कि 'सत्य का सूर्य' यद्यपि अकेला है पर अन्धकार की बड़ी सेना पर विजय पाता है। उस मनुष्य को जो ईश्वर की इच्छा के अनुसार सत्य का प्रचार कर रहा है कोई डर नहीं। एक सच्चा मनुष्य दूसरों के डर से सत्य को कदापि नहीं छिपा सकता। जीवन चला जाये पर सत्य नहीं जा सकता। बलदेव तुम कहते हो मैं अकेला हूं 'ईश्वर' भी एक है और 'धर्म भी एक है, फिर मनुष्यों से क्यों डरना है? इन शब्दों में कैसा उच्च भाव और कैसी शक्ति है! यह शब्द मुझे पैग़म्बर 'मूसा' के शब्दों को याद दिलाते हैं जो कि उसने 'जोशुआ' से कहे थे जब कि वह 'इसराइलीज़' (यहूदियोंकी पुरानी जाति) को उतार शत्रुओं के सामने जाने को उद्यत था। मूसा ने कहा 'जेहोवा'* ही है जो तेरे आगे २ चलेगा। वह तेरे साथ होगा। वह तेरा साथ न छोड़ेगा! भय मत कर कम्पित मत हो।

ऋषि दयानन्द निर्भय था क्योंकि वह जानता था कि ईश्वर उसके साथ है और ईश्वर उसे नहीं छोड़ सकता. दयानन्द निर्भय था; उस ने 'सत्य' को अपनी 'जनप्रियता' नहीं है। और वह शान्ति जो सत्य का बहिष्कार कर देती है कमज़ोर और जीवन नाशक शान्ति है। क्योंकि सत्य ही 'शक्ति' है और शक्तिशाली पुरुष ही जाति को बचा सकते हैं.

---

* 'जेहोवा' पुरानी बाइबिल में ईश्वर का नाम है।

ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त।

दयानन्द की शक्ति सम्पन्न व्यक्ति है ! अर्वाचीन भारत का ऋषि शक्तियों का केन्द्र है. उसका बल, मेरा विश्वास है कि 'ब्रह्मचर्य' है।

चौदह वर्ष की अवस्था में ही वह अनुभव करता है कि वह पारिवारिक जीवन के लिये नहीं है 'राष्ट्र के परिवार' के निर्माता बनने की पुकार सुनायी देती है. वह केवल अपने 'उद्देश्य' के साथ 'विवाहित' हो सकता है ! वह साधना के कठोर नियमों का जीवन व्यतीत करता है। एक दिन कुछ स्त्रियें उसके दर्शन करने और धर्मोपदेश ग्रहण करने आती हैं, वह उन से कहता है:—'कि विद्या प्राप्त करो। किसी स्वामी या फ़क़ीर को अपना गुरु मत बनाओ, तुम्हारे गुरु तुम्हारे पति ही हैं. उनकी सेवा करो और आशीर्वाद पाओ' यह एक उपयोगी शिक्षा है जो स्त्रियों को बहुत से पाखण्डियों से जो गेरुवे वस्त्र पहने हुये अपने को साधु कहते हैं, बचा सकती है. 'दयानन्द का जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य अद्भुत है' * यह मुझे भारत के दूसरे महान् ब्रह्मचारी शङ्कर की याद दिलाता है, अथर्ववेद में ठीक ही कहा है:—

अभी हाल में महात्मा गान्धी ने भी ऋषि दयानन्द के महान् ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुये लिखा था कि वह मेरे लिये भी ईर्ष्या का विषय है ! वस्तुतः ब्रह्मचर्य की दृष्टि से दयानन्द का दृष्टान्त सारे इतिहास में अनुपम है। अनुवादक.

"जो ब्रह्मचर्य पालन करता है वही आचार्य होता है" ब्रह्मचर्य के साथ २ दयानन्द के अन्दर स्त्रीजाति के लिये सम्मान है। एक लड़की को वृक्ष के नीचे बच्चों के साथ खेलते देखकर वह उसे प्रणाम करता है और कहता है:—'यह मातृ शक्ति है" प्रत्येक स्त्री में वह माता का लक्षण देखता है और यह उसका स्वप्न था कि कुछ देवियें जो वेदों की पण्डिता हों आर्य ऋषियों के सन्देश को भारत की देवियों तक पहुंचा सके! कैसा सुन्दर स्वप्न है! जिस दिन यह स्वप्न चरितार्थ होगा प्राचीन भारत के उस समय का सौन्दर्य फिर यहां लौट आयेगा जब कि यह देश न केवल ऋषियों से प्रत्युत गार्गी और मैत्रेयी के समान ऋषिकन्याओंसे, जो वेदद्रष्टा ऋषियों में गिनी गईं, सुशोभित था.

मेरी सम्मति में ब्रह्मचर्य ही नयी शिक्षा का नये समाज संगठन, नयी राजनीति, नयी राष्ट्रीयता, और नयी सभ्यता, का आधार होना चाहिये. प्राचीन भारत का महत्त्व इस बात में था कि उसे ब्रह्मचर्य की शक्ति में गहरा विश्वास था. हम अथर्ववेद के एक प्रकाश पूर्ण सूक्त में पढ़ते हैं कि 'विस्तृत पृथिवी और द्युलोक, तथा 'परा' और 'अपरा' विद्या इनकी ब्रह्मचारी अपनी तपस्या से रक्षा करता है. 'ब्रह्मचर्य" का वास्तविक अर्थ पवित्रता, सादगी और आत्मसंयम का भाव है। प्राचीन आर्यावर्त्त में ब्रह्मचय की सुन्दर भावना थी और उसने अपनी संस्कृति और सभ्यता के फल को उस दिव्य आत्मा-ब्रह्म के चरणों में समपण किया था, आज राष्ट्रों

ने इन्द्रियों के आगे अपना समर्पण किया है. ईसा के सम्वत् को दो हजार वर्ष बीत गये । कहते हैं कि उन्नति के दो हज़ार वर्ष ! यह उन्नति बहुत २ वर्षों तक 'मृत्यु के नृत्य" के रूप में हुई है यह उन्नति 'भोग' है और सभ्यता का भविष्य इन्द्रियों के भोग पर निर्भर नहीं है प्रत्युत साधारण आध्यात्मिक जीवन की शक्ति पर निर्भर है । आत्मा के, आदर्श, बल पर आश्रित है ।

मैं हर्ष के साथ युवकों से कहूंगा कि ब्रह्मचर्य का अभ्यास करो । हमारे इतिहास में यह साधारण समय नहीं है । यह आराम और चैन उड़ाने का समय नहीं है । आर्यावर्त के ऋषि हमें 'आत्मसंयम" और 'आत्मपवित्रता' के जीवन के लिये पुकार रहे हैं जिससे आत्मा की महान् 'शक्ति' 'भारत की स्वाधीनता" के लिये मुक्त हो जावे । छान्दोग्य उपनिषद् के एक प्रसिद्ध वाक्य में उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं:-"श्वेतकेतो, ब्रह्मचर्य का पालन कर, हमारे परिवार में कोई नहीं हुआ जिस ने ब्रह्मचर्य का व्रत पालन न किया हो- तुझे भी इसका पालन करना चाहिये. जो मनुष्य ब्रह्मचर्य के बिना है, वह वर्ण से रहित है" संसार के साहित्य में एक अत्यन्त हृदयग्राही दृश्य महाभारत में भीष्म के अन्तिम समय का है. युद्धक्षेत्र में बाणों की शय्या पर भीष्म पड़ा है ! लोग उस के लिये एक कोमल तकिया लाते हैं. वह उसे नहीं लेता. वह महान् ब्रह्मचारी कहता है:—'कठोर योद्धा के लिये ऊन या रूई के तकिये नहीं चाहियें" तब वह युधिष्ठिर को सम्बोधन कर

के कहता हैः—हे राजन् सुनो जो मैं ब्रह्मचर्य के विषय में कहता हूं. संसारमें कुछ भी नहीं है जिसे वह प्राप्त न कर सके जो जन्मसे मृत्यु पर्यन्त ब्रह्मचारी रहा हो, ब्रह्मचर्य के अभ्यास से बहुतों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई और बहुतों को इसी लोक में सुख की. अथर्ववेद में आया है "ब्रह्मचारी मनुष्यों में सर्वोपरि है और पृथ्वी पर ज्योतिर्लोक के समान चमकता है" और फिर कहा गया है कि "ब्रह्मचारी आदि में ब्रह्म से उत्पन्न हुआ' अपने को 'तपस्या'के कपड़ोंसे ढक कर वह तपकी शक्ति से खड़ा हुआ. इसी ब्रह्मचारी से वैदिक ज्ञान उत्पन्न हुआ और अमरता से युक्त विज्ञान भी" फिर अथर्ववेद के इस सुन्दर 'ब्रह्मचर्यसूक्त' में दूसरा मन्त्र इस प्रकार है:—"ब्रह्मचारी ही प्रकाशमान ब्रह्म (आत्मा शक्ति) को धारण करता है-उस में सारी इन्द्रियें प्रोत हैं"

धर्मपुस्तकों में ब्रह्मचर्य की क्यों इतनी प्रशंसा है ? ब्रह्मचर्य ही में शारीरिक, मानसिक,और आध्यात्मिक शक्ति का रहस्य है. एक शरीर के रक्तबिन्दु, (Blood corspuscles) जिस में जीवन विद्युत की रक्षा की गई है, ज़हरीले कीटाणुओं से युद्ध कर सकते हैं. क्या यह बात इस का भी समाधान नहीं कर देती कि ऋषि दयानन्द ज़हर के असर को जो उन्हें कई बार भोजन या मिठाई में मिला कर दिया गया कैसे रोक सके ? मनुष्यों की बड़ी संख्या को अभी यह पता नहीं है कि औषधालय की सारी दवाइयों की अपेक्षा 'स्वास्थ्य' और 'रोग निवारण, के लिये ब्रह्मचर्य कहीं अधिक उपयोगी है. एक नई पुस्तक ' स्वास्थ्य आध्यात्मिक आधार' (Spiritual basis

of Health) में डाक्टर हूकर बतलाते हैं कि चिकित्सा के प्रचलित भद्दे तरीके अब उठते जाते जाते हैं, मैं समझता हूं कि आगामी दिनों में 'ब्रह्मचर्य' की जीवनदायक शक्ति को लोग अधिक और अधिक अनुभव करते चले जायेंगे, ब्रह्मचर्यके साथ ही अधिक बल और शक्ति प्राप्त होती है. हमें पता है कि दयानन्द के अन्दर कितनी 'महान शक्ति' थी. आजन्म ब्रह्मचारी के विषय में कुछ और भी महत्व-पूर्ण बात होती है आश्चर्यजनक रीति पर उसकी मस्तिष्क शक्ति नैसर्गिक बुद्धि और आध्यात्मिक मार्ग में दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति का विकाश होता है।

दयानन्द ने अपने उपदेश और उदाहरण से बतला दिया कि ब्रह्मचर्य प्रचलित साधुओं की तपस्या से बिलकुल भिन्न वस्तु है। छान्दोग्य उपनिषद् की प्रारम्भिक प्रार्थना यह है:— 'मेरी इन्द्रियें पूर्णता को प्राप्त हों, और वेद, बल, और शक्तिपर बारम्बार ज़ोर देते हुये एक उच्च सिद्धान्त की शिक्षा देते हैं. वैदिक ऋषि कहता है. हमारी इन्द्रियों को प्रोत्साहित करो, यह ईसाई तपस्वी 'सूसो' से, जो लकड़ी के क्रास को जिसमें कीलें लगी होती थीं अपने कन्धों के बीच में रख अपने क्रास पर चढ़े हुये प्रभु की भक्ति में उसे धारण करता था; कभी सहमत नहीं हो सकता. आर्य ऋषि की इससे विपरीत यह प्रार्थना थी:— मेरी इन्द्रियें पूर्णता को प्राप्त हों. और ऋषि दयानन्द ने बतलाया कि शरीर को पीड़ा पहुंचाना ईश्वर की ओर नहीं ले जा सकता. इन्द्रियें ज्ञान का द्वार हैं. ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त 'शक्ति' का सिद्धान्त है. उसके अनुसार शरीर को

क्षीण नहीं करना चाहिये प्रत्युत 'उसे संयत' बलवान् और शुद्ध बनाना चाहिये. अन्यथा वह कैसे उच्च कम्पनों (Higher vibrations) को कैसे ग्रहण कर सकेगा और क्यों कर विश्व के आध्यात्मिक जीवन का वाहक हो सकेगा ? 'मेरी इन्द्रियें पूर्णता को प्राप्त हों' ! और पूर्ण वृद्धि बिना पवित्रता के नहीं हो सकती. इस सच्चाई को अर्वाचीन युरोप के बहुत से प्रतिभा शाली पुरुषों ने कुचल डाला है । उदाहरण के लिये इटली के कवि को ले लीजिये जो कहता है कि "जीवन विकीर्ण इन्द्रिय भोग का ही नाम है" यह 'इन्द्रिय भोग' का सिद्धान्त एक किनारे की 'अति' है जैसी कि दूसरी ओर इन्द्रियों से घृणा करने की है । इन्द्रियें आत्मा का प्रकाश और साधनरूप हैं पार्थिव जीवन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता यदि वह प्रकृति से घृणा करे और उससे लाभ न उठाये. 'ब्रह्म चर्य, का अर्थ यह है कि हम अपनी इन्द्रियों को शुद्ध रक्खें यदि हम उन्हें अधिक खिलाते हैं या भूखा रखते हैं तो परिणाम में निर्बलता होगी रोग और भ्रम की उत्पत्ति होगी। पतञ्जलि ठीक कहते हैं कि योग उन्हें न सिखाना चाहिये जिनके शरीर स्वस्थ नहीं हैं. धर्म 'स्वास्थ्य' का नाम है ।

इन्द्रियों का ब्रह्मचर्य क्या है ? इन्द्रियों में प्रथम 'चक्षु' है. हम एक बार अनुभव करें कि कितने पाप दृष्टि के कारण होते हैं ! "दृष्टि' के द्वारा अर्वाचीन पतित अवस्था' इस विषय पर

एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। नृत्य, बाल,* (Balla)सिनेमा थियेटर व्यङ्गचित्र फड़कते हुये उपन्यास इन सब से कितना पतन होता है! ऋषि दयानन्द ने एक सेठ के रईस से कहा कि "किन्हो अश्लील नाटकों को मत देखो और किसी नाच में मत जाओ" इन से नेत्र अपवित्र हो जाते हैं।

इसके बाद 'वाक्य' अर्थात् वाणी है। वाणी पुकार, उच्चारण और शब्दरूप है. इसी के द्वारा पारस्परिक व्यवहार सम्भव है। यह विचार की दूसरी पहलू है। 'वाक्' अवश्य पवित्र होनी चाहिये; इसलिये वही बात कहो जिसे तुम सत्य समझते हो। आत्मा की आवाज़ को रीतिरिवाजों की रूढ़ि से मत दबाओ सत्य कहो परन्तु वह कड़वा न हो। अपनी वाणी को शुद्ध करो और तुम्हारे शब्दों से शुद्धता प्रकट हो जायगा। क्या तुम ने नहीं देखा है कि एक सच्चे मनुष्य का शब्द किस प्रकार हृदय के प्रति एक विशेष अर्थ को लिये हुये होता है। ऐसी वाणी शुद्ध है, उसमें 'शब्द शक्ति' होती है इस लिये वह हृदय की तन्त्री का स्पर्श करती है।

फिर 'प्राण' का ब्रह्मचर्य है। इसे भी शुद्ध करना चाहिये। प्राण जीवन-वायु श्वास है। बहुधा हम वाणी का संयम कर लेते हैं पर प्राण का नहीं, इसी लिये बुरे स्वप्न आते हैं। ब्रह्मचर्य के विद्यालय में इस प्रकार अपने को शिक्षित करो कि तुम्हारी स्वप्नावस्था, अर्धबोधावस्था भी शुद्ध और

---

* बाल एक प्रकार का अंग्रेजी नाच है।

पवित्र हो। ऋषि दयानन्द ने कहा ' दिन और रात 'ओ३म्' का जप करो। प्रार्थना करने वाले मनुष्य बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि प्रार्थना 'ओ३म्' के जप से प्राणों की शुद्धि होती है और प्रत्येक समय हमारी आकांक्षा के अनुरूप उत्तर मिलता है।

इस के पश्चात् 'श्रोत्र' अर्थात् श्रवण की इन्द्रिय है। गप्प और व्यर्थ बकवास का सुनना श्रोत्र के ब्रह्मचर्य को तोड़ना है। प्राचीन ग्रन्थों में ईश्वर के नाम सुनने की बहुत महिमा बतलायी गयी है। आज भी भारत में भिखारी ईश्वर का नाम लेकर भिक्षा माँगते हैं।

इसके बाद स्वाद और स्पर्शकी इन्द्रियोंका संयम आवश्यक है। मसालेदार तथा उत्तेजक भोजन और पेय वस्तुयें ब्रह्मचारी के लिये निषिद्ध हैं। और मांस भोजन भी। मांस खाना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है, यह विचार बहुत से भारतीय युवकों में प्रचलित हो रहा है। यह ऐसा विचार है जिसे मैं कभी नहीं समझ सका। मैं इस से विपरीत समझता हूं कि मांस छोड़ देने से स्वास्थ्य की उन्नति होती है। एक फ्रेञ्च डाक्टर पाल कार्टन अपनी पुस्तक :— 'Consumption Doomed' में बतलाते हैं कि मांसरहित भोजन 'क्षय' को रोकने और उसे अच्छा करने में कितना सहायक है। सादा भोजन ही स्वास्थ्य का रहस्य है।

फिर 'मन' का ब्रह्मचर्य है कितने इस का वास्तविक जीवन में पालन करते हैं? दो बातें आवश्यक हैं। अशुद्ध

विचारों को अलग रक्खो और जब तुम्हें 'पवित्रता' प्राप्त हो जावे उसका अभिमान मत करो। सच्चा ब्रह्मचारी नम्र होता है वह 'अनन्त ईश्वर' के सामने अपने 'छोटेपन' को अनुभव करता है॥

हृदय का भी ब्रह्मचर्य है। 'प्रेम' दिव्य वस्तु है। परन्तु 'आसक्ति' का नाम नहीं है। यह याद रक्खना चाहिये कि ब्रह्मचर्य का पालन प्रत्येक आश्रम में यहां तक कि गृहस्थाश्रम में भी करना चाहिये। विवाह का अर्थ ऐन्द्रियिक स्वच्छन्दता नहीं है। और हमें 'भोग और 'सुख' को एक न समझना चाहिये। भोग का मार्ग सुखप्रद मालूम पड़ता है पर उस का अन्त मृत्यु का मार्ग है। अर्वाचीन भारत में सब से अधिक दुःख की बात जीवनशक्ति या मनुष्यकी 'उत्पादक शक्ति' की पवित्रता को न समझना है। बालक पतियों और बालिका पत्नियों का हृदय विदारक दृश्य दिखायी देता है! परिणाम क्या है? निर्बल शरीर और असामयिक मृत्युयें. हमारी वर्त्तमान अवस्था प्राचीन धर्म ग्रन्थों में बतलायी दशा से कितनी विपरीत है :— "हे इस संसार के स्वामिन, हमारे प्राण त्रिगुण आयु तक अर्थात् ३०० वर्ष तक बने रहें!" भारत कभी महान् नहीं हो सकता, यदि भारतीय अपने 'बल' अर्थात् शारीरिक शक्ति का अपव्यय करेंगे। धर्म से 'पुरुष शक्ति' अवश्य बढ़नी चाहिये।

अपनी शक्तियों का अपव्यय मत करो प्रत्युत अपने शरीर और बल को बढ़ाओ और उसे मनुष्य की सेवा में लगाओ. तुम वैसे ही बनो जैसी हरकी सुन्दर घास होती है—वह नम्र

है परन्तु बलवान् है. प्रत्येक इन्द्रिय और मन तथा हृदय को भी शुद्ध रखना चाहिये और ब्रह्मचर्यपूर्वक संयम करते हुये तुम संसार बढ़ते हुये 'आश्चर्य' को जल्दी अनुभव कर सकोगे शुद्ध मनुष्य ही 'प्रकृति के सौन्दर्य' और 'जीवन के सत्य' का अनुभव करते हैं. 'मिडल्टे' ने कहा है:—'सदाचार जीवन का और जो कुछ जीवन का आधार है उस सब का सब से बड़ा शत्रु है' इसके विपरीत ऋषि दयानन्द का सदाचारनियम अर्थात् ब्रह्मचर्य के नियम का, जोकि आर्यसंस्कृति और आर्यसभ्यता की आत्मा है, वर्णन है. यह प्राचीन ऋषि का दर्शन था जिस ने इस सच्चाई को ज्ञात किया कि जीवन अत्युच्च अवस्था में 'पुण्य' (Good) के सौन्दर्य के रूपों में फूट पड़ता है. सदाचार ही इस जीवन का हृदय है ! ब्रह्मचर्य यथार्थ सत्ता की साक्षात् जड़ को पकड़ता है. पवित्र मनुष्य धन्य हैं क्योंकि वे ही शान्ति के निर्माता हैं.
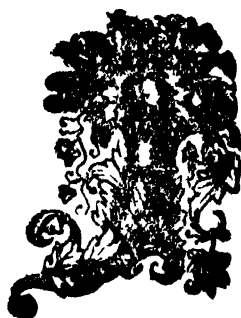
नवीन भारत को सन्देश.

गत रात्रि को एक उत्साही युवक ने मुझ से कहा कि "मैंने दयानन्द की संक्षिप्त जीवनी पढ़ी जिस में यही पाया कि वह इस स्थान से उस स्थान को वैदिक शास्त्रार्थ के लिये गया. मैं चक्कर में पड़ गया. उसका भारत के युवकों के लिये क्या सन्देश है ?

दयानन्द की जीवनी अब भी लिखी जा ी शेष है. दयानन्द की जीवनी 'वैदिक शास्त्रार्थों' से कहीं अधिक बहु मूल्य है. कार्लायल किसी जगह लिखता है कि एक सुन्दर चित्र पहिली वार देखनेपर तुच्छ मालूम पड़ सकता है परन्तु ज्यों २ हम उस पर दृष्टि जमाते हैं उसका सौन्दर्य का हमें अनुभव होता आता है. दयानन्द की जीवनी एक ऐसा ही चित्र है. यह मुझ पर प्रकट होतो गयो है ज्यों २ मैंने उसे देखा और देखना जारी रक्खा है।

दयानन्द मनुष्य जाति का प्रेमी था. परन्तु उसका मनुष्य-प्रेम केवल (अपनी जाति को) पृथक् करना नहीं है उसका सन्देश आर्य जाति की भावना और भारत की राष्ट्रीयता से प्रोत्साहित हो रहा है. उसके हृदय में प्राचीन वैदिक मन्त्र की आवाज़ गूंज रही है:—

मातृभाषा' 'जातीय सभ्यता' और 'मातृभूमि' यह तीन कल्याण के स्रोत हैं, इन्हीं को अपने हृदय में बैठाओ' कितने लोग जानते हैं कि दयानन्द ने उन बड़े प्रसिद्ध देशभक्त—दादाभाई नौरोजी और लोकमान्य तिलक से भी पूर्व 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया था. दयानन्द ने अपने बनाये आर्यसमाज का प्रजातन्त्रात्मक संगठन रक्खा. उनके राजनैतिक भाव प्रजातन्त्र भावों से भरे हुये हैं. यजुर्वेद १६ वें अध्याय के २४ वें मन्त्र पर टीका करते हुये वे लिखते हैं 'मनुष्यों को सदा ध्यान रखना चाहिये कि उनके देश का शासन एक व्यक्ति के द्वारा नहीं प्रत्युत कौंसिल के द्वारा होता है. सत्यार्थप्रकाश के एक सारगर्भित वाक्य में वे इस आर्यविचार को विस्तार से लिखते हैं कि 'राजा मनुष्यों का रक्षक है' वे लिखते हैं—"कोई कितना ही करे पर जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है" क्या यह शब्द जो ऋषि ने १८८२ ई० में लिखे हमारी स्वराज्य फिलासफी के असली तत्त्व को प्रकट नहीं करते हैं ?—स्वराज्य उत्तम राज्य से बढ़ कर है. दयानन्द ने भारत पतन के कारणों का भी विश्लेषण किया है. एक सुन्दर वाक्य में जिस में बहुत सा ऐतिहासिक ज्ञान भरा हुआ है, वे लिखते हैं:—

'स्वायम्भव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम राज्य रहा तत्पश्चात् परस्पर के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये'

फिर वे लिखते हैं:—

'जब भाई २ परस्पर लड़ते हैं तो एक विदेशी पंच बन बैठता है, पारस्परिक फूट से भूतकाल में पाण्डव कौरव और यादवों का नाश होगया, और यह बीमारी अब तक हमें नहीं छोड़ती'

फूट की बीमारी को दयानन्द बारम्बार भयानक कहकर घृणित बतलाता है, उसे वह 'दुर्योधन का पाप' और हमारे सारे सुख को अपहरण करने वाली और हमें दुःख सागर में डुबाने वाली बतलाता है. दयानन्द अपने देशवासियों के दोष छिपाता नहीं. क्यों अंगरेज़ हम पर राज्य करते हैं ? दयानन्द इस प्रश्न के उत्तर में अंगरेज़ों की देशभक्ति, आत्मसमर्पण उनकी शिक्षा और उत्तम सामाजिक रीतियों की ओर ध्यान दिलाता है। दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं:—

जो युरोपियनों में बाल्यविवाह न करना लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना। बुरे २ आदमियों का उपदेश नहीं होता। वे विद्वान होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते जो कुछ करते हैं सब परस्पर विचार और सभा में निश्चित कर के करते हैं. अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़, उद्योग किया करते हैं। देखो अपने देश के बने हुये जूते को कचहरी में जाने देते हैं .... आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहरते हैं जैसे कि अपने देश में पहिनते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन] नहीं छोड़ा परन्तु तुम में से बहुत से

लोगों ने उन का अनुकरण कर लिया। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं ……… इत्यादि गुणों और अच्छे २ कर्मों से उन की उन्नति है"

एक दूसरे सारगर्भित वाक्य में ऋषि इस देश में विदेशी राज्य के निम्न कारण बतलाते हैं (१) पारस्परिक फूट, बाल विवाह, बिना स्वयंवर के विवाह, इन्द्रियों का विषय भोग, असत्यव्यवहार, पापाचरण, वेदाध्ययन का त्याग और दूसरे दुष्कर्म। ऋग्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या करते हुये ऋषि लिखते हैं:—

> जब मनुष्य आत्मसम्मान युक्त न्यायपरायण और सच्चे होते है तभी वे राज्यैश्वर्य को भोग सकते हैं. जब वे दुष्ट और अन्यायी हो जाते हैं तब उन का सर्वनाश हो जाता है।

यही बात २००० से अधिक वर्ष हुयें पहिले यहूदी पैगम्बर ने कही थी 'सदाचार किसी जाति का उच्च बनाता है। परन्तु इस सुन्दर बाइबिल की शिक्षा को ईसाई जातियों ने पैरों तले कुचल डाला है और तीन शताब्दियों से यूरोप ऐसे जातीय भावोंसे सताया हुआ है जिन में सच्ची आर्यभावना का बपतिस्मा नहीं लगा है जिसके अनुसार एक ईश्वर, एक मनुष्य जाति और पारस्परिक सेवा का नियम हो आदर्श है'

भारत के लेखकों में दयानन्द ही पहला था जिसने आर्य-भाषा को जातीय भाषा बनाने का बीड़ा उठाया. भारतीय परम्परागत बातों और आदर्शों का सब से अधिक प्रोत्सा–

इन किस के भीतर हुआ ? उस ने भारतीय परिस्थिति को देखा, उसने पतन की अवस्था को समझा. उसने पुनरुज्जी-वन की नयी भावना की आवश्यकता का अनुभव किया. उसने समझ लिया कि भारतवर्ष 'आत्मसंरक्षण' के नियम को भङ्ग करने के कारण पतित हुआ है उसने अनुभव किया कि जाति की आवश्यकता यह है कि उसे एक ज़ोरदार जीवन की-प्रगाढ़ जीवन को—तीव्र प्रेरणा मिले। और यह जीवन प्रेरणा आर्य आदर्श के नये ज्ञान और नये बोध से ही प्राप्त हो सकती थी। उसका विश्वास था कि भारत अपने जातीय आदर्शों को प्रकट किये बिना कदापि महान् नहीं बन सकता अ य धर्म के नूतन परिज्ञान और उसके लिये नूतन प्रेम के द्वारा 'नवभारत' का जन्म होगा।

इसी लिये उस की अभिलाषा थी भारत के बहुत से सुधारकों और धार्मिक संस्थाओं को जाति की सेवा के लिये एक समान 'वेदों' पर लाया जा सके। कदाचित् अर्वाचीन भारत का सब से पहिला ऐक्यसम्मेलन(Unitycongerence) वह था जिसे दयानन्दने अबसे आधी शताब्दी पूर्व बुलाया था वह कान्फरेन्स निष्फल हुयी जैसे कि हमारेदेश में और बहुत उपयोगी प्रयत्न निष्फल हुये हैं परन्तु दयानन्द की 'असहि ष्णुता' (Intolerance) को कहना इस बात को भुला देना है कि उसने एक से अधिक बार वास्तविक ऐक्यसम्मेलन का प्रयत्न किया उस सम्मेलन की अर्वाचीन भारत के रहस्यपूर्ण विचारक श्री केशवचन्द्र सेन ने भी बड़ाई की। 'इण्डियन मिरर" (Indian Mirror) पत्र ने जो

केशव के प्रभाव में था, १८७७ ई में लिखा था 'यदि वह कान्फ्रेंस जो पण्डित दयानन्द के निवास-स्थान पर वर्त्तमान संशोधकों में एकता उत्पन्न करने के लिये बुलायी गयी है व्यवहारिक और वास्तविक आधार पर एकता स्थापित कर सकी तो इस में सन्देह नहीं कि इस का बहुत शुभ परिणाम होगा। दयानन्द 'एकता' चाहता था और उस के लिये उस ने प्रयत्न किया, ऋग्वेद में " शान्ति पूर्वक मिलने और व्यवस्था पूर्वक सहयोग करने" "प्रेम औरसहानुभूति के भावों के साथ विचार करने" "विचारों को सुनियम मार्ग में चलाने" और "हृदय को एक दूसरे के साथ प्रेम में रखने तथा बुद्धि को सब की भलाई में लगाने" का आदेश है। 'पारस्परिक सहायता और 'पारस्परिकभलाई' का सिद्धान्त अनेक वेदमन्त्रों मेंबतलाया गया है।

मेरा विचार है कि फूट की जड़ में निर्बलता और शक्ति का अभाव है। शक्ति से ही ऐक्य और स्वाधीनता प्राप्त होगी है. 'शक्ति' के सन्देश की नये भारत को ज़रूरत है. और दयानन्द ने अपने जीवन में और अपनी शिक्षाओं में 'शक्ति के सन्देश' में अपना गहरा विश्वास प्रकट किया है. मैं जिस शक्ति का समर्थन करता हूं वह सर्वतोमुखी है—अर्थात् शरीर मन और आत्मा की शक्ति मैं जाति के युवकों को दयानन्द की जीवनी पढ़ने को कहता हूं इसमे एक कारणहै वह एक शक्तिशाली मनुष्य था. यह लंगोट धारण करने वाला स्वामी शरीर में बलवान् था. वह अपने वेदभाष्य में लिखते हैं कि ईश्वर के सेवकों को समझ लेना चाहिये कि

उन्हें शारीरिक शक्ति बढ़ाना आवश्यक है. शरीर और आत्मा दोनों की शक्ति बढ़नी चाहिये. वे सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि यदि केवल मानसिक शक्ति और विद्या की ही वृद्धि की जावे और शरीर की न की जावे तो एक शारीरिक शक्ति वाला मनुष्य सैकड़ों विद्वानों को पराजित कर सकता है. इस लिये शरीर और मन दोनों का विकाश होना चाहिये. मेरा विश्वास है कि शरीर को बनाना चरित्र को बनाना और जाति को बनाना है. मैं शारीरिक शिक्षा का आध्यात्मिक मूल्य समझता हूं. उन पुरुषों से जो जाति सेवा के लिये उत्सुक हैं, मैं कहता हूं—अपने शरीर को बनाओ. दयानन्द की शारीरिक शक्ति के विषय में बहुत कथाएं हैं, वह बनारस जा रहा है. वर्षा के कारण सड़कों पर कीचड़ है. एक गाड़ी कीचड़ में फस गई है. गाड़ीवान् गाड़ी को ऊपर खींचने में असमर्थ हो निर्दयता पूर्वक बैलों को मार रहा है. दयानन्द उन गरीब जानवरों को बचाने आता है. दयानन्द गाड़ीवान् से बैलों को मारने को मने करता है और उन के जुये को हटा कर गाड़ी को कीचड़ से बाहर निकाल देता है! एक दूसरे अवसर पर वह एक गाड़ी को जिसमें घोड़ा जुता हुआ है पीछे से रोक देता है घोड़ा आगे नहीं चल सकता ! निस्सन्देह अर्वाचीन भारत का यह ऋषि एक 'पहलवान' था. सच्ची अध्यात्मिकता कोमल भावुकता का नाम नहीं है.

यह भारत का 'आध्यात्मिक पहलवान्' यह शक्तिशाली मनुष्य निर्भय था. एक जगह वे लिखते हैं मुझे सिवाय 'नारायण परमात्मा' के किसी का भय नहीं दयानन्द गङ्गा में स्नान कर रहे हैं कि एक मगर उनके पास आजाता है एक मनुष्य यह देख कर 'मगर' 'मगर' चिल्ला उठता है. दयानन्द को कोई कुछ भय या घबराहट नहीं होती और शान्ति पूर्वक कहते हैं जब मैं इसे हानि नहीं पहुंचाना चाहता तो यह भी मुझे न पहुंचायगा' कुछ बदमाश लोग ऋषि पर और उनके साथियों पर एक शास्त्रार्थ के समय आक्रमण करते हैं वह अपने निवास स्थान को लौट आते हैं. बदमाश निवास स्थान पर आक्रमण करते हैं. उनका लेखक उन्हें शान्त करने के लिये बाहर आता है वे उसे पीटते हैं. दयानन्द को इस का पता लगता है और वे तत्काल लेखक को बचाने पहुंचते हैं। अपने हाथ में एक छड़ी लेकर वह बदमाशों को डाटता है। वे इस शक्ति के मनुष्य को नहीं जीत सकते और वे तेज़ी से भाग जाते हैं।

वह बात को तोड़ मरोड़ कर नहीं कहता। विरोधियों की भीड़ में भी वह सत्य को उसी प्रकार प्रकट करता है जैसा कि उसे प्रतीत होता है वह 'सत्य' को बलवानों के मुख पर कहता है। एक सभा में जहाँ एक देशी राजा बैठे हुये थे भाषण करते हुये उसने कहा कि जो "राजा होकर वेश्या रखता है वह स्वयं उसी की जाति का है. राजा ने कहा कि आप ने मुझे भी नहीं छोड़ा" दयानन्द उत्तर देता है कि मैं किसी का पक्षपात किये बिना सत्य को कहता हूं यह मेरा है, वह सत्य व्यवहार ही करता चाहे उसमें कुछ कठोरता

भी आ जावे. और इसको ही उसके निर्बल समालोचकों ने "असहिष्णुता,, कहा है. दयानन्द अन्धविश्वास या कपट का असहिष्णु है. वह काम चलाने के लिये अपने सिद्धान्त को नहीं छोड़ सकता. वह बिना किसी शिकायत के दुःख झेलता है, वह धीराचित हर्ष के साथ दुःख सहन करता है।

इस शक्तिशाली मनुष्य के हृदय में दीन और दलितों के लिये कोमल प्रेम भरा है! वह अपने पिता की सम्पत्ति और सुखपूर्ण घर को छोड़ता है और दीनों के भ्रातृसंघ में मिलता है. वह 'दृढ़ता' के विद्यालय में अपना संयम करता है वह कई दिन के उपवास करता है. वह ईंटों का तकिया लगा कर खाली जमीन पर सोता है. वह केवल लंगोटी लगाए स्थान २ पर घूमता है. वह राजा के महल की अपेक्षा गरीब की झोंपड़ी को पसन्द करता है. वह पतितों और दलितों को अपने हृदय से लगाता है. एक मनुष्य जो 'नीच' जाति का समझा जाता है उसके खाने को कढ़ी चावल लाता है. दयानन्द प्रेम के उपहार को स्वीकार करता है. एक ब्राह्मण जो वहां उपस्थित था दयानन्द से कहता है:—"आप भ्रष्ट हो गये क्योंकि आपने इस मनुष्य का लाया भोजन खा लिया"। दयानन्द उत्तर देता है कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट हो सकता है:—"या तो वह दूसरे को सता कर प्राप्त किया गया हो अथवा उस में कोई गन्दी वस्तु मिली हो. परन्तु यह ग़रीब आदमी है जो पसीना बहा कर रोटी कमाता है उसका भोजन सर्वोत्तम है" वह जाति भेद शून्य ईश्वर की घोषणा

करता है और अपने समाज में वह अनाथों जाति पीड़ितो, विधवाओं, दुर्भिक्ष से सताये हुओं, दीनों, छोटी २ से जाति के पुरुषों और सब को सम्मिलित करता है।

यदि आज वह हमारे साथ भौतिक शरीर युक्त होता तो वह किन भावों से भारत को देखता. मन्दिरों को, स्कूलों को, ग्रामिणों को, दलित जातियों को, और पीड़ित स्त्रियों की ओर देखो, जिन से एक दिन आर्यावर्त्त बना था। मेरा विचार है कि उस ने अपना सन्देश केवल एक समाज के लिये ही नहीं छोड़ा है प्रत्युत सारी जाति के लिये। वह पुरुषशक्ति और बल का सन्देश है। अपने वेद भाष्य में वे लिखते हैं " यह आवश्यक है कि मनुष्य परमेश्वर की सहायता से धर्मपूर्वक, अपने शरीर, विद्या, और आत्मबल की वृद्धि करें" और फिर लिखते है :— "जब तक मनुष्य ईश्वर भक्त और बलवान् न हो जावें उन्हें ऐश्वर्य प्राप्ति नहीं हो सकती' यह शक्ति का सन्देश आत्मसमर्पण का सन्देश है। आत्मसंमर्पण को आर्यावर्त्त में यज्ञ कहते थे और ऋषि दयानन्द ने बतलाया है कि "पशुवध का यज्ञ से कोई सम्बन्ध न था" हमारे अन्दर जो पाशविक वृत्तियें हैं उन का हनन करना चाहिये। हमारी भोग की इच्छा दूर होनी चाहिये। उससे 'प्रोत्साह' उत्पन्न होता है। हमें दीनों और दलितों से सहयोग का प्रयत्न करना चाहिये। यह वह 'यज्ञ' है जिसे करने को दयानन्द भारत के युवकों को पुकारता है। युवकों यदि तुम

जाति की सेवा करने को उत्सुक हो तो सादे और मज़बूत बनो और दीनों तथा दलितों के पास जाओ, ग्रामीणों के पास जाओ जो 'आशा' और 'विश्वास' के सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शक्ति का सन्देश लेकर जाओ और इस जाति की रात्रि में 'आत्मिक शक्ति का 'प्रदीप' अपने साथ ले जाओ।

वैदिक पुनरुज्जीवन,

अपने आत्मचरित में दयानन्द अपना उद्देश्य एक नये 'संशोधन' को प्रारम्भ करना बतलाता है. उस का आधार एक नया 'पुनरुज्जीवन' है दयानन्द 'वैदिक पुनरुज्जीवन' का प्रारम्भ करने वाला है। यदि दयानन्द के जीवन का एक पहलू लूथर को तो दूसरी 'इरैस्मस'* को याद दिलाती है. एक प्रकार से दयानन्द 'धार्मिक संशोधन' उस के वैदिक पुनरुज्जीवन का ही दूसरा रुप है. वह वैदिक विद्या का नये सिरे से अध्ययन का समर्थन करता है जिस से हिन्दुसमाज और हिन्दुस्तान को मुक्ति मिल सके।

वैदिक स्वाध्याय से मेरे विचार में पूर्व और पश्चिम के धर्मों के इतिहास पर भी बहुत प्रकाश पड़ेगा वैदिक विद्या न केवल भारत में आर्यधर्म के पुनर्निर्माण में सहायक होगी प्रत्युत धर्मों के तुलनात्मक विज्ञान comparative Science of Religions) में भी उस से बहुत सहायता प्राप्त होगी. एक जर्मन विचारक ने ठीक कहा कि 'धर्मका इतिहास भाषाके

---

*यह युरोप के उन विद्वानों में हुआ है जो 'ह्यूमैनिस्ट' (Humanist) कहलाते हैं और जो युरोप में विद्या के पुनरुज्जीवकों में हैं।

इतिहास में प्रतिविम्बित है। वैदिक भाषा को दयानन्द ने मथुरा में विरजानन्द जो कि एक महान् संस्कृत विद्वान थे के चरणों में बैठ कर विशेष ध्यानके साथ पढ़ा था, वैदिक भाषा, वैदिक प्रथायें और वैदिक विचार, मेरी सम्मति में, संसार की धार्मिक ज्ञानवृत्ति की कुञ्जी के समान हैं. संसार के धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों पर विचार करो वे तीन ही विचार हैं:—ईश्वर, जीव, और प्रकृति, वैदिक 'द्यौस्' शब्द, ग्रीक 'ज्यूस' (Zeus) और लैटिन 'डयूस्' (Deus) जिनके अर्थ परमेश्वर हैं एक ही हैं. वैदिक शब्द 'आत्मा' और लैटिन 'आम्नी' (Amni) भी मिलते हुये हैं मधुर प्रार्थना में जीसस् ने अपने शिष्यों को सिखाया:—'हमारा पिता जो आकाश में है' मुझे भी प्राचीन वैदिक प्रार्थना जो कि द्योष्पितर को सम्बोधित है सुनाई देती है निस्सन्देह पारसी और ईसाई मतों पर आर्य प्रभाव के विषय में मेरी एक अपनी थ्योरी है मेरा सिद्धान्त है कि आर्यसभ्यताकी लहरें (Waves of culture) आर्यावर्त्त से संसार के दूसरे देशों में पहुंचती थीं क्या वेदों और 'ज़ेद अवस्था' में सादृश्य स्पष्ट नहीं दीखता ऋग्वेद में हम पढ़ते हैं कि स्वर्ग में पितर लोग दो श्रेणियों में विभक्त हैं—एक वे जिन का दाहकर्म हुआ और दूसरे वे जिन का नहीं हुआ. क्या यह सम्भव नहीं कि यह दूसरी श्रेणी ईरानी (पार्सी) लोगों की हो हो जो अपने भारत में बस जाने वाले आर्य भाइयों से पृथक् हो गये थे.

क्या वैदिक 'यम' ज़ोरोस्ट्रियन 'युन' (Yuna) को याद नही दिलाता ? वेदमें यम 'विवस्वात्' का पुत्र है और अवस्ता का 'विवहन्तु' का पुत्र है. वैदिक 'उषा' पारसी धर्म पुस्तकों की 'उसाह' केसमान है. वरूण जिसे ऋग्वेद में 'असुरमेधा' भी कहा है पारसी 'अहुरमज़रा' की स्मृति कराता है. और वैदिक 'मित्र' देवता 'मिश्रन' की जिस की पूजा किसी समय रोमन साम्राज्य में व्यापक रूप से प्रचलित थी, 'होतर' शब्द अवस्ता में वर्णित पारसी पुरोहित 'ज़ोतर' (Zootar) के समान है ।

क्या मैं अर्वाचीन भारत के पुनरुज्जीवन का दयानन्द को पिता कहने में ग़लती पर हूं ? क्या मेरे इस कथनमें भूल है कि वेदों का सन्देश फैला कर दयानन्द ने सभ्यता और संस्कृति का बड़ा उपकार किया . वैदिक अध्ययन बतलाता है कि भारत वर्षमें उस प्राचीन काल में परिष्कृत सभ्यता पल रही थी जब बिटेन पाशविक निद्रा में पड़ा हुआ था . प्रजातन्त्र पश्चिम का आविष्कार नही है . 'स्वराज्य, शब्द वेदों में आता है वैदिक युग में स्वाधीन मनुष्योंकी महासभाराज का निर्वाचन करती थी. राजा संगठन तन्त्र शासक ग्रन्थोंमें ऐसे वाक्य हैं जो राजा के निर्वाचन को सूचित करते हैं. वेदमें आता है 'मनुष्य तुझे राज्य के लिये चुनते हैं. अथर्ववेद में हम 'सभा' और 'समिति' का वर्णन पढ़ते हैं. 'सभा' ग्राम महासभा थी और 'समिति' देश की मुख्य सभा थी जिस में राजा भी सम्मि-

लित होता था. एक राजसभा (Council of State) भी होती थी और जनपद सभायें भी थीं. निर्वाचन का सिद्धान्त वैदिक युग में भी विद्यमान था. यजुर्वेद में आता है:— "हे मनुष्यो तुम उसे अपना राजा चुनो जो न्यायकारी, पक्षपात शून्य, विद्वान् और सब का मित्र हो" आर्यभारत ने 'दासता' की प्रथा को उड़ा दिया था जिसे कि अरस्तू के समान महान् विचारक भी सभ्यता की आवश्यकता समझता था . आर्य लोगों ने प्लेटो के समान समझा था कि 'न्याय' ही राष्ट्र का 'बन्धन':— आत्मिक बन्धन है.

यह भी समझा गया था कि न्याय को धर्मशास्त्र से अलग नहीं किया जा सकता . राजा क़ानून का ही चलाने वाला था. पश्चिमी प्रजातन्त्रों का आधार शारीरिक शक्ति— 'मज़बूत भुजायें और पैनी तलवार'— हैं .और पश्चिम हिंसा से हिंसा की ओर हो जा रहा है . गत महायुद्ध का उत्तर धिक्कार जो युरोप को मिला है:— 'पराजय' है . और आज पश्चिमी सभ्यता आत्मघात करना चाहती है. आर्यनीति के अनुसार राष्ट्र का आधार धर्म होना चाहिये. भेड़ियेका नियम (Law of wolf) नहीं प्रत्युत मनुष्यता का नियम . मैं नहीं समझ सकता कि जब तक 'मनुष्यता' को जातियों से ऊपर न समझा जायगा, जातीय झगड़े कैसे बन्द होंगे ?

मेरी समझ में आधुनिक प्रजातन्त्रों का सब से बड़ा पाप यह हुआ है कि उन्होंने राजनीति से धर्म को पृथक् कर

दिया. और आज भारत में भी बहुत से पश्चिमी विचार को दुहराते हुये कहते हैं:—"राजनीति राजनीति है जैसे कि व्यापार व्यापार ही है" मिस्टर हैवेलिस (Havblis) आर्य राज्यसङ्गठन से इतने प्रभावित हुये कि उन्हें सन्देह है कि ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट जो कि 'राजतन्त्रता' को लिये हुये है भारत के आर्यों की उस दार्शनिक स्कीम से अधिक कार्यक्षम या उत्तम है जिस के अनुसार मनुष्योंके चुने हुये प्रतिनिधियों के बनाये क़ानून धार्मिक और राजनैतिक दोनों दृष्टियों से मान्य थे और राष्ट्र में सब से बड़ी शक्ति के समान थे.

आर्य भारत का सामाजिक—जीवन प्रसन्न और सुसंगठित था वैदिक काल की वधुयें छोटी कन्यायें न थी प्रत्युत युवतियें थीं. बालविवाह हिन्दूसमाज की शक्ति को चूस रहा है. ऋषि दयानन्द ने ठीक कहा था कि 'हिन्दूसमाज के शारीरिक अःधपतन का कारण बालविवाह ही है' प्राचीन भारत में स्त्रीधन अवश्य दिया जाता था पर 'देन लेन' की कोई प्रथा न थी. आश्रम और वर्ण उस समय थे परन्तु वे समाज के विभाग थे न कि जातपात के रूप में पुरोहित लोग क्षत्रिय बनकर युद्ध में भी जाते थे. गृहस्थ जीवन का मुख्य अङ्ग आज कल के समान 'रसोईघर' न था प्रत्युत पूर्वजों और उनके आदर्शों की पवित्र स्मृति. वैदिक अध्ययन से यह भी पता लग सकता है कि प्राचीन आर्यों ने कतिपय जातियों को ऐतिहासिक जीवन दिया. आर्य संस्कृति का यूनानी लोगों पर निस्सन्देह असर पड़ा. मेरे विश्वास में

आर्य संस्कृति पश्चिम को कई संस्कृतियों (cultures) की आदि स्रोत है।

प्राचीन काल में 'आर्य बनाने' की प्रणाली ने भारत को शक्तिशालिनी जाति और बहुत सी जातियों को सभ्य बना दिया. पालीभाषा के एक लेख के चीनी अनुवाद में सुग्रीव का हनुमान् को उस समय का दिया आदेश अङ्कित है जब कि वह सीता की खोज में प्रस्थान करने को था. उस से मालूम पड़ता है कि भारत को उस समय विदेशों का आश्चर्यजनक ज्ञान था. हाल के अनुसन्धान से भी पता चलता है कि आर्य विचार और प्रभाव केवल चीन और जापान तक ही नहीं फैले थे प्रत्युत मैक्सिको (अमरीका) तक. क्या दयानन्द उस कथन में भ्रमपूर्ण था कि उसने अपने गुजरातके एक व्याख्यान में कहा कि 'पाताल' अमरीका का ही नाम था।

आर्यों के मस्तिष्क का बहुत उच्च और कार्यक्षम विकास हुआ था. इस लिये वे 'विद्या' पर इतना जोर देते थे और बुद्धि की वृद्धि से एक बड़ी सभ्यता का विकाश हुआ आर्यावर्त में उच्च सभ्यता थी. मुर्दों को गाड़ना उस उच्च और बल युक्त संस्कृति तथा धर्म का केवल एक नमूना है जिसका भारत में आर्यों ने विकाश किया था.

ऋषि दयानन्द ने बिना प्रयोजन के ही अपने देशवासियों से नहीं कहा कि आर्य साहित्य का गम्भीर स्वाध्याय करो.

यह हमारा सब से बहु मूल्य उत्तराधिकार है. दयानन्द ने समझ लिया कि अब समय आगया है प्राचीन सन्देश-आर्य धर्म का सन्देश-पश्चिमी जातियों को भी सुनाया जावे.

एक भारतवासी* को जो उस समय इंग्लैण्ड में रहते थे और अब स्विट्ज़रलैण्ड में हैं, ऋषि दयानन्द ने लिखा कि:-"तुम से कितने विद्यार्थी संस्कृत पढ़ते हैं और वे कौन कौन पुस्तकें पढ़ते हैं. तुम्हें भारत नहीं लौटना चाहिये जब तक कि तुम वहाँ वैदिक धर्म के विषय में व्याख्यान न देलो। यह काम धन इकट्ठा करने से कहीं अच्छा है और सचमुच धन्य है" और ऋषि फिर उसी पत्रमें पूछते हैं:—"अब वेदोंके विषय में हमारे प्रिय मित्र मोनियर विलियम्स और प्रोफेसर मैक्समूलर की क्या सम्मति है ?"

मुझे पता है कि बहुत से पश्चिमी विद्वान् कितने पक्षपात पूर्ण हैं. एक प्रसिद्ध फ्रेञ्च समालोचक ने कहा कि दार्शनिक मस्तिष्क के लिये संसार में केवल तीन इतिहास :— ग्रीस, इज़राइल, और रोम के— पढ़ने योग्य हैं. यह समालोचक भारत का और मिसर का कोई ज़िक्र नहीं करता. मनुष्य जाति का यद्यपि पाँचवां भाग भारत में बसता है और स्पष्ट रीति से उन प्रभावों से युक्त है जो वेदों से आये हैं, पर पश्चिमी समालोचकों को क्या दोष दिया जावे ? आज भारत में कितने लोग हैं जो वेद पढ़ने की चिन्ता करते हैं ? युवक कहते हैं— 'पुरानी हड्डियों का क्यों उखाड़ना ! परन्तु मेरा विश्वास है कि यह प्राचीन धर्म पुस्तकें हमारा बड़ा उत्तराधिकार हैं। यह उत्तराधिकार इतना पवित्र है कि उस पर

*यह भारतवासी ऋषि दयानन्द के शिष्य श्री० श्यामाजी कृष्ण वर्मा हैं. जो उस समय कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में संस्कृत के प्रोफ़ेसर थे।

मिथ्या दर्प करना या अपना सन्तोष मात्र कर लेना उचित नहीं. यह ऐसा उत्तराधिकार है जिसका उपयोग हमें मनुष्यजाति की सेवा के लिये करना चाहिये।

दयानन्द ने प्राचीन आर्य धर्म के विषय में पश्चिमी विचार भ्रमपूर्ण विचार को शुद्ध कर के एक बड़ा भारी उपकार किया पश्चिम के पौरस्त्य विद्वानों ने वैदिक धर्म को उन देवताओं की पूजा समझ रक्खा था जो कि प्राकृतिक शक्तियों में पुरुषत्व की कल्पना मात्र हैं. मिस्टर मैकडालन यहां तक कहते हैं:-ऋगवेद का 'बहुदेववाद' (Polytheism) सब से अन्तिम सूक्तों में 'अद्वैतवाद' का रंग लिये हुये है. मैक्समूलर वैदिक धर्म को हेनोथीइस्टिक*Henotheistic कहता है. दयानन्द सिद्ध करता है कि वैदिक धर्म में न 'बहुदेववाद' न 'अद्वैतवाद' और न 'हैनोथिइज़्म' है प्रत्युत अत्यन्त शुद्ध चमकता हुआ 'एकेश्वरवाद' Monotheisma है. स्वामी दयानन्द के इन शब्दों में बड़ी उच्च भावना है:—

> इन कारणों से वह सम्मति, जो कुछ इस देश के लोग और कुछ युरोपियन् रखते हैं कि वेदों में केवल भौतिक देवताओं की पूजा है, भ्रम पूर्ण है। उतनी ही भ्रमपूर्ण उन

---

* वैदिक देववाद के विषय में प्रो० मैक्समूलर ने यह एक विशेष शब्द घड़ा है इसका अर्थ यह है कि वेद के अनेक देवताओं में ग्रीस के देववाद के समान कोई एक मुख्य देवता नहीं प्रत्युत वैदिक ऋषि जिस देवता की स्तुति करता है उसी को सब से मुख्य मान लेता है। अनुवादक.

बहुत से युरोपियन् लोगों की सम्मति है जो कहते हैं कि आर्य लोग प्रारम्भ में भौतिक देवताओं की पूजा करते थे। और बहुत युगों के पश्चात् उन्हें शनैः २ ज्ञात हुआ कि केवल परमेश्वर ही पूजनीय है। सत्य यह है कि कि आर्य लोग प्रारम्भ से ही एक ईश्वर की पूजा करते थे।

एकता की कल्पना प्राचीन भारत और आर्यधर्म का हृदय है. उस में एकेश्वरवाद का समर्थन करके दयानन्द ने, मेरी सम्मति में, जाति का बहुत उपकार किया. पण्डित मालवीय ने अभी उस दिन कहा थाः—हिन्दू धर्म की उच्चता और पवित्रता का क्षय विदेशी राज्य के साथ भारत में हुआ जिस का फल यह है कि हिन्दू धर्मावलम्बियों में से अधिकांश न तो उस के सिद्धान्तों को समझते हैं और न उन का पालन करते हैं परन्तु पतन के समय में भी एकता के पैग़म्बर-ऋषि और द्रष्टा हुयेहैं जिन्होंने वैदिक प्रोत्साहन की फिर घोषणा की 'तुम हमारे पिता हो' हमें मार्ग दिखाओ जैसे पिता पुत्र को दिखाता है। और महाभारत में भी सदाचार की उच्च शिक्षा हैं:—'यह आचार का नियम है, सुनो और तदनुसार आचरण करो—दूसरों के साथ वह व्यवहार मत करो जो तुम अपने साथ नहीं चाहते' अत्यन्त प्राचीन काल से ज़ोरोस्टर के आगमन से भी पूर्वकाल से, जिसने फारस को लगभग आर्यों के सदृश किया, भारत में इसलाम के शासन काल तक और ब्रिटिश राज्य काल तक यहां पर बारम्बार 'आर्यावर्त्त के दर्शन' एकता के दर्शन के सन्देश सुनाने वाले उत्पन्न होते रहे हैं।

—

मुसलमानों के समय में रामानन्द, कबीर, गुरु नानक चैतन्य के समान महान पुरुष उत्पन्न हुये, और ब्रिटिश शासन काल में राजा राममोहनराय, श्री रामकृष्ण, महर्षि देवेन्द्रनाथ टागोर, श्री केशवचन्द्रसेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ के समान शिक्षक, और संशोधक उत्पन्न हुये हैं ऋषि दयानन्द इन महात्माओं के समूह में से थे जिन ने हिन्दुओं की पीढ़ी को जो अपने प्राचीन उत्तराधिकार को भुला चुकी थी, एक नित्य परमात्मा का उपदेश किया जिस के विषय में ऋग्वेद अति हर्षपूर्ण गीत में कहता है:—'यापा जार मित्रप्रियम्' "ईश्वर से ऐसे ही प्रेम करो जैसे कोई प्रेमिका अपने गुप्त प्रेमी से करती है"।

दयानन्द की मृत्यु के कुछ वर्ष पश्चात् मैक्समूलर की 'सैक्रड बुक आफ दी ईस्ट' के ढंग पर एक रशियन संस्करण निकालने का उद्योग किया गया. इस रशियन संस्करण में वेद और उपनिषद् भी निकलने थे, रूस के विद्वान पी. ए. बैलङ्गर (P. A. Boulanger) ने जो ग्रन्थमाला के सम्पादक थे निम्न शब्दोंमें प्रोफेसर मैक्समूलरके अनुवाद पर असन्तोष प्रकट किया है:—

> दुर्भाग्यवश मुझे प्रतीत होता है कि यदि रूस की जनता को प्रो० मैक्समूलर के अनुवादों द्वारा ही वेदोंका परिचय मिलता है तो जनता की रुचि वेदों में उत्पन्न न होगी. मैक्समूलर के अनुवाद में जो बात खटकती है वह है— अयुक्तशब्दों का बाहुल्य, गन्दे वाक्य समूह और बहुत सी अस्पष्ट बातें.........जहां तक मैं समझ सकता हूं वेदों

"को शिक्षा इतनी उच्च है कि यह मेरा एक पाप होगा यदि मैं रूस की जनता को वेदों का परिचय अस्पष्ट टूटे फूटे अनुवाद के 'माध्यम' द्वारा कराऊं इस प्रकार वे लोग वह लाभ न उठा सकेंगे जो कि वेदों की शिक्षा से मनुष्यों को मिलना चाहिये।

दयानन्द ने वेदों का नयी प्रणाली पर नया अर्थ और अनुवाद कर के एक महान् कार्य का प्रयत्न किया। उन ने प्रारम्भ कर दिया पर वे उसे समाप्त करने तक जीवित न रहे। उनका रसोइया जिसे दयानन्द के भोजन में विष मिलाने के लिये रिसवत मिली थी—वह रसोइया जगन्नाथ नहीं जानता था कि वह क्या कर रहा था। ऋषियों के समान दयानन्द ने उसे क्षमा कर दिया और यहां तक कि उसे नैपाल भाग जाने को धन भी दिया। १८८३ ई० ३० अक्टूबर को दिवाली दिन सूर्यास्त के समय गायत्री मन्त्र का पाठ करता हुआ शान्तिपूर्वक ऋषियों के समान अपना देह त्याग करता है। परन्तु मृत्यु से कुछ पूर्व दयानन्द जगन्नाथ से कहता है कि दण्ड से बचने के लिये राठौर राज्य की सीमा के बाहर भाग जाओ। दयानन्द ने उस समय कुछ शब्द कहे जो मुझे बड़े सारगर्भित प्रतीत होते हैं:— "अब मेरी मृत्यु से काम असमाप्त ही रह जायगा. जगन्नाथ तुम्हें पता नहीं है कि तुम ने दूसरों को कितनी हानि पंहुचायी है निस्सन्देह ऐसे समय पर जब दयानन्दने नयी अर्थप्रणालीसे वेद भाष्य करना प्रारम्भ ही किया था उसकी मृत्यु न केवल आर्यसमाज के लिये प्रत्युत सारी मनुष्यजाति के लिये एक बड़ा हानि थी. भारतीय सभ्यता की दृष्टि से यह ऐसी हानि हुई जिसकी पूर्त्ति होना असम्भव था।

ऐसे समालोचक भी हैं जिन्हें प्राचीन विद्या में लाभ नहीं दिखायी देता. वे कहते हैं कि दयानन्दके समान मनुष्यों ने वैदिक समय का जो सौन्दर्य चित्रित किया है वह कल्पना मात्र है. इन में से ही एक बुद्धिमान् समालोचक लिखता है कि "यदि वह सत्य भी हो तो भी उन प्राचीन धागों को इकट्ठा करके उन से वर्त्तमान जीवन को बुनने के प्रयत्न से क्या लाभ है ? " फिर वह लिखता है:—कि यथार्थ यह है कि अब हम दूसरे प्रकार के संसारमें हैं और यदि भारत आधुनिक जीवनके मार्ग से अलग खड़ा रहना चाहता है और प्रारम्भिक कालके जीवन की अवस्था लाना चाहताहै तो इसमें भारतकी ही हानिहै".यह अंग्रेज समालोचक मेरी समझमें प्राचीन सभ्यता और आधुनिक जीवन दोनों की यथार्थ भावना को नहीं समझ सका है. वह दूसरे पाश्चात्य आलोचकों के समान सभ्यता की एक ऐसी थ्योरी से प्रारम्भ करता है जो कि भ्रमपूर्ण कल्पना से दूषित है. यह थ्योरी अभी हाल में प्रकाशित एक पुस्तक—"The Philosophy of civilization" (सभ्यता की फ़िलोसफ़ी) में स्पष्टरूप से प्रकट हुई है. पुस्तक का लेखक मि० टाउनर (Towner) यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि "प्रत्येक सभ्यता अन्धकार से न कि प्रकाश से उत्पन्न होती है और उसका प्रारम्भ उन लोगों से होता है जो कि जंगली और मूर्ख होते हैं" यह अन्धकार से प्रकाश और अज्ञान से संस्कृति (कलचर) के विकाश की कल्पना ऐतिहासिक दृष्टि से आर्यों के विषय में ठीक नहीं है. आर्यों को हम इतिहास के प्रभात में ही अत्यन्त सुसंस्कृत और सभ्यता युक्त पाते हैं.यह सत्य है कि 'दूसरे प्रकारके संसार'

में रहते हैं परन्तु अब इस का पुनरुद्धार होना आवश्यक हो गया है और इस पुनरुद्धार के कार्य में मैं नम्रतापूर्वक कहूंगा कि 'प्राचीन बुद्धि' बहुत २ सहायता दे सकती है। आधुनिक—और आधुनिक का अर्थ पश्चिमी समझा जाता है— दौड़ को बिना रोक के उसी रास्ते में चलने देना संसार को गहरे प्रलय में डुबा देना है। सदियों तक पूर्व ही पश्चिम को सभ्य बनाता रहा है. युरोप की उन्नता दो शताब्दी पुरानी भी नहीं है। उस के इतिहास पर १७८६ की 'फ्रैंच क्रान्ति' से लेकर १६१७ की 'रूस की क्रान्ति' क्रान्ति तक दृष्टिपात किया जावे तो एक दुःख जनक यह बात सामने आती है कि युरोप हिंसा की भावना से हिंसा की भावना की ओर ही बढ़ता गया है. आज पश्चिम की सभ्यता फ्रान्स के युद्ध क्षेत्र में रक्त बहाती हुयी पड़ी है. क्या भारत को उन्नति के नाम पर युरोप की नकल करनी चाहिये ? युरोप निस्सन्देह अपने घातक साधनों में और प्रकृति-पूजा में अर्वाचीन है. युरोप निस्सन्देह अपनी 'मशीन गन' के विषय में अर्वाचीन हैं. उस की 'इण्डस्ट्रियलिज़्म' के कारण थोड़े से मनुष्यों को धनी बनानेके लिये बहुतों को अपने सुख और स्वास्थ्य से वञ्चित होना पड़ा है. इस प्रकार की 'अर्वाचीनता' का भारत को अनुकरण न करना चाहिये. यह 'अर्वाचीनता' 'प्रकृतिवाद' के पागलपन का ही नाम है. यह 'अर्वाचीनता' लालच और स्वार्थ है. इस प्रकार की अर्वाचीनता भारत की मृत्यु का कारण होगी.

दयानन्दने ठीक बतलाया कि हिन्दू समाज और भारतीय राष्ट्र का पुनः संगठन पश्चिम की नकल करने से सम्भव नहीं है, एक जाति जब वह— चाहे कितनी ही बड़ी— दूसरी जाति का अनुकरण करती है तो वह अपने व्यक्तित्व 'स्वधर्म' और उद्देश्य को छोड़ देती है.

'अर्वाचीनता मेरी समझ में बहुत कुछ 'बिच्छू' के समान है. उसके डङ्क होता है पर वह अदूरदृष्टि वाला है. कीड़ों के अध्ययन करने वाले फेबर ने बिच्छू के विषय में इस अद्भुत बात का पता चलाया था. उसके आंखे होती हैं परन्तु बहुत कम देखता हैं. फेबर कहता है कि 'बिच्छू अन्धे मनुष्य के समान अपना मार्ग टटोलता है' अर्वाचीनता—पश्चिमी सभ्यता—का बहुत अंश मेरी समझ में बिच्छू के समान अदूरदृष्टि वाला है. अन्यथा हम बहुतों को यह पुकारते हुये नहीं पाते कि "परमात्मा को छोड़ने में हम 'मनुष्य का' पता लगा रहे हैं" आर्ययुग हमारे युग से निम्न बातों में उच्च था (१) उस काल की नैसर्गिक प्रतिभा की शक्ति (२) उसका अदृश्य जगत् की यथार्थता का अनुभव (३) प्रकृति के साथ सहयोग (४) 'विद्या' का सम्पादन निष्काम रूप से केवल विद्या के लिये (५) उस काल की परिष्कृत सादगी और आध्यात्मिक संस्कृति.

निम्नलिखित वेद वाक्य से कैसी सुन्दर भावना प्रकट हो रही है:—

विद्या को सन्ध्या के समय ,विद्या को प्रातःकाल, विद्या को मध्यान्ह समय, विद्या को सूर्य की किरणों के साथ, विद्या को प्रार्थना के साथ हम अपने में अङ्कुरित करें !

तैत्तिरीयोपनिषद् का निम्नलिखित आदेश है:—

तुम्हारी माता तुम्हारे लिये 'देव' के समान हो
तुम्हारा पिता तुम्हारे लिये 'देव' के समान हो
तुम्हारा आचार्य तुम्हारे लिये देव के समान हो
तुम्हारा अतिथि तुम्हारे लिये देव के समान हो ।

संसार की भावी आशा सरल आध्यात्मिक सभ्यतामें है. और कथन वेदों की विद्या में मेरे विश्वास का हेतु भी प्रकट कर देता है. युरोप शताब्दियों तक भारत से पीछे था. इस के पश्चात् पाश्चात्य प्रभुता का दिन आया. युरोप में ठीक उस समय जब भारत अपनी प्राचीन संस्तकृति और आदर्शों को भुला चुका था, यन्त्रकला विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ. ऐसा भारत 'विज्ञान' से सज्जित युरोप का मुकाबिला नहीं कर सकता था. भारत का पतन होगया. उसे एक बड़ी चोट अधिकतर अपने अन्दर से ही पहुंची. उसका इलाज किसी पश्चिमी सिद्धान्त की नकल करने से नहीं हो सकता है प्रत्युत उसकी अपनी आध्यात्मिक संस्कृति और आदर्शों से हो सकता है. उसे उन बंधनों को ढीला करना आवश्यक है जो कि रीतिरिवाज और भय से उत्पन्न हुये हैं. इस के लिये

उसे शक्ति की आवश्यकता है. और यह शक्ति की पुकार आर्ष संस्कृति में बार २ सुनाई देती है. एक सुन्दर वैदिक प्रार्थना में परमात्मा को 'सूर्यों का सूर्य' कहा है. गीताके एक प्रसिद्ध श्लोक में आया है कि 'प्राचीन विद्या' पहिले सूर्य को सिखाई गयी थी, सूर्य ने उसे मनु को पढ़ाया. क्या सूर्य शक्ति का चिन्ह नहीं है ?

हिन्दुसमाज का सब से बडा पाप निर्बलता है. हिन्दू समाज को सब से बड़ी आवश्यकता शक्ति है. और शक्ति सब प्रकार की होनी चाहिये, आत्मशक्ति आवश्यक है, पर शरीर और मन की भी शक्ति चाहिये, यह तीनों शक्तियें सुन्दरता के साथ दयानन्द की जीवनी में मिली हुई हैं ।

वैदिक पुनरुज्जीवन का समर्थन करता मैं उसे सब से पृथक् नहीं करना चाहता. बल्कि आर्यबुद्धि का आधुनिक जीवन से सम्पर्क हो. इस सम्पर्क से दोनों ही अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली बनेंगे. कट्टर पण्डित वेदों के विषय में बहुत भयभीत से रहे हैं. उन्होंने वेदों की रक्षा एक कोने में वेदों को अलग रख के करने की चेष्टा की है. अरे, वेदों को एकान्त से बाहर निकालो. उनका देशी भाषाओं में अनुवाद करो, पश्चिम की भाषाओं में अनुवाद करो ! उन्हें प्रत्येक भारतीय घरमें ले जाओ. उन्हें समुद्रसे परे भेजो. उनके सन्देशको दूर २ तक फैलाओ. यह इतिहास के प्रभात का सन्देश है. यह वह सन्देश है जो हमें प्रचलित सभ्यता के मूल्य को फिर से समझनेमें सहायता देगा. मनुष्य की समस्या इतिहासके सारे

युगों में एक रही है—वह है, प्रकृति का आत्मशक्ति के द्वारा रूप परिवर्त्तन. एक या दूसरे रूप में अब भी विचार, कर्म, और भक्ति का काम प्रकृति का परिवर्त्तन हो रहा है. यह तीन विचार, कर्म और भक्ति एक दूसरे के विरुद्ध नहीं हैं. जब बन में फिर एक बार एक नियम राज्य करेगा तो इतिहास में एक नये अध्याय का प्रारम्भ होगा. इन तीनों की एकता के कारण ही ऋषियों के युग में जीवन का सौन्दर्य था. ऋषियों का हम पर ऋण है और जब हम वैदिक पुनरुज्जीवन को सहारा देते हैं तो हम केवल ऋषि ऋण को ही उतार रहे होते हैं. हमारे देश के अधिकांश के लिये प्राचीन धर्मपुस्तकें सर्वथा बन्द हैं. कट्टर पण्डितों ने वेदों को एक गुप्त सोसाइटी के समान बना रक्खा है जिस से सिवाय कुछ शिक्षितों के सब को बाहर रहना पड़ता है. यह आश्चर्य है कि पश्चिम का सम्पर्क हमारे लिये इतना भारी पड़ जावे. बहुत वर्ष हुये कि बम्बई के एक गवर्नर ने कहा था कि आधुनिक शिक्षा हिन्दूधर्म के विश्वास को जड़ से हिला रही है. इस लिये मैं जाति के युवकों से अपील करता हूं कि वे आर्यवर्त्त का, उसके धर्मपुस्तकों का, उस के बुद्धिसम्पन्न द्रष्टाओं का, और कर्मवीरों का नये सिरे से अध्ययन करें, एक जाति नकल करने से नहीं बनती प्रत्युत आत्म विश्वास' आत्मज्ञान और आत्मगौरव से बनती है. मैं जातिके युवकों से आर्य-युग के अध्ययन करने को इस लिये नहीं कहता कि वे भारत के भूतकालीन कारनामों से सन्तुष्ट हो जावें प्रत्युत इस लिये कि वे भारतको उसके प्राचीन भूतकाल से भी अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये नया प्रयत्न प्रारम्भ करें. भारत के विद्या और

कर्म के क्षेत्र में महान् प्रयत्न और सफलतायें—साहित्य और कला में, दर्शन और धर्म में, भारत का कार्य सभ्यता के पुरावृत्त में चिरकाल तक आदर की दृष्टि से स्मरण किया जायगा. परन्तु इस से कुछ लाभ नहीं भूत की महिमा गाई जाय और वर्त्तमान में कुछ न किया जाय. भूतकाल को वर्त्तमान में उन्नति करने का उत्तेजक समझना चाहिये न कि आराम करने का सहारा. भारतीय विद्या के एक पुराने धर्म-ग्रन्थ में हम पढ़ते हैं " मैं स्वयं ही अपना पूर्वज हूं" इस मन्त्र का भारतीयों के हृदय में प्रवेश हो जाना चाहिये और उन्हें आलोचनात्मक भाव से धर्मग्रन्थों को पढ़ना चाहिये. वे आर्य मस्तिष्क के सच्चे समुद्र हैं. और इस समुद्र के मन्थन से नई लक्ष्मी का प्रकाश होगा जो पूर्व और पश्चिम दोनों को आशीर्वाद देगी।

राष्ट्रों की चिकित्सा के लिये।

संसार की महान धर्म पुस्तकों के नामों पर विचार करना बड़ा रोचक है. 'बाइबिल' का अर्थ 'पुस्तकें' है. 'टेस्टामेण्ट' का अर्थ 'नियम व्यवस्था' अथवा क़ानूनी समझौता है, यहूदी बुद्धि वस्तुतः धर्म के क़ानूनी विचार से ऊपर नहीं उठी थी, यहूदी धर्मपुस्तकें मनुष्य और ईश्वर के बीच क़ानूनी समझौते के भावों से भरी हुई हैं. 'कुरान' शब्द 'कुरा' धातु से जिस का अर्थ पढ़ना या पाठ करना है, बना है इस लिये कुरान का शब्दार्थ 'पढ़ना' है. 'अवस्ता' नाम क़ानून के एक बड़े विचार को प्रकट करता है. 'ज़ेन्द अवस्ता' का अर्थ है 'क़ानून की व्याख्या' ऐसा ही भाव बौद्ध 'त्रिपिटक' का है जिसका शब्दार्थ है—क़ानून या धर्म की तीन टोकरी।

वेद 'ज्ञान' को धर्म का सर्वस्व मानते हैं, स्वतः 'वेद' शब्द का अर्थ ज्ञान-अर्थात् साइन्स है, बहुत से पाश्चात्य विचारों के अनुसार डार्विन की जीव विद्या से धर्म की जड़ उखड़ चुकी है. पश्चिम के धर्मवाद का बहुत बड़ा काम धर्म और विज्ञान में लड़ाई कराना ही रहा है, आर्य ऋषियों के अनुसार धर्म और विज्ञान में ऐसा कोई झगड़ा नहीं है, मेरे विचारानुसार आर्यबुद्धि की यह एक बड़ी विशेषता है. जीसस की एक अभी हाल में प्रकाशित जीवनी में उस के लेखक डाक्टर

पीपेनब्रिङ् (Dr. Piepenbring) ईसाई धर्म की कुछ पूर्वी धर्मों से तुलना करते हुये लिखते हैं 'ईसाई सब दूसरे धर्मों से उच्च है और बाइबिल सब पवित्र पुस्तकों में अत्यन्त श्रेष्ठ है, परन्तु मेरे विचार में बाइबिल जिन अर्थों में पश्चिम के बड़े बड़े चर्चों ने ले रक्खी है, धर्म को केवल रूढ़ियों कुछ रूढ़ियों का समूह मात्र बना देती है. वैदिक ऋषि के लिये धर्म विद्या का नाम है।

प्राचीन भारत ने बहुत से क्षेत्रों में सचाई की खोज की थी. विक्रमशिला के विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञानों के लिये एक महाविद्यालय था। आब ज्यो तषो किसी अंश तक न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण (Law of Gravitation) के सिद्धान्त के समीप पहुंचे थे क्योंकि उन्होंने भौतिक वस्तुओं पर पृथ्वी द्वारा होने वाले आकर्षण को समझ लिया था। साहित्य में, गणित में, चिकित्सा शास्त्र में, कला में और ज्योतिष में आर्यों ने महान् उन्नति की थी। परन्तु मेरी समझ में इन सब विज्ञानों से बढ़ कर 'जीवन के विज्ञान' (Science of Life) में वे अत्यन्त महान् थे. आर्य ऋषियों के अनुसार 'धर्म' ही जीवन का विज्ञान है वे केवल एकान्त वासी साधु ही न थे. उन में से बहुत से मनुष्यों में मिलते थे. और ऋषि दयानन्द जो आध्यात्मिक दृष्टि से उन्हीं ऋषियों की वंशपरम्परा मे था, मनुष्यों से मिलता था. उन के हृदय में प्राचीन अग्नि का ही एक अंश प्रज्वलित हो रहा था। उस ने स्थान स्थान पर जाकर बिगुल बजा कर पुकार की— आर्य ऋषियों की सन्तानों, आर्य आदर्श की ओर बढ़ो। इस ज्ञान

को दयानन्द ने अपने देशवासियों के आगे फिर घोषित किया :— सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्— वह सर्वोच्च शक्ति सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है।

किसी वस्तु का जानना 'आकार' से 'प्रकार' तक पहुंचना है और 'प्रकार' से पश्चिमी मनोविज्ञान के अनुसार 'प्रत्यय' या "आन्तरिक अर्थ तक" । आर्य ऋषियोंने 'आत्मा' शब्द का, प्रयोग किया, तब तक वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं होता जब तक हम 'आकार' और 'प्रकार' से आगे बढ़कर आत्माके द्वारा साक्षात् न कर लें. 'ज्ञान' आत्माके साक्षात् का ही नाम है. * यह बात भारत के ऋषियों पर प्रकट हुई थी जबकि वे अपने जङ्गल के आश्रमों में प्रकृति के सङ्गम में रहते हुये 'अन्तरात्मा' में रमण करते थे. उनके प्रश्नों का उत्तर यथार्थ तत्व के रूपमें उन्हें प्राप्त होता था।

---

* लेखक ने यहाँ पर गहरे दार्शनिक सिद्धान्त को संक्षिप्त रीति पर लिख दिया है. प्रयोजन यह है कि हमारे ज्ञान में प्रथम निर्विकल्पक ज्ञान जिसे 'Sensation' कहते हैं होता है इस ज्ञान का हमें बोध नहीं होता. इसके बाद सविकल्पक ज्ञान अथवा 'Perception' होता है. जिस में यह घड़ा है' ऐसी प्रतीति होती है. उस के पश्चात् अनुव्यवसाय या Self consciousness जिसे दार्शनिक 'Apperception' भी कहते हैं होता है. इस में 'मैं घड़े को जानता हूं' ऐसा बोध होता है इस तीसरी अवस्था के बिना कोई ज्ञान नहीं हो सकता. यह ज्ञान में 'मैं' के साथ ज्ञान को एक किया गया है इस लिये आत्मा साक्षात्कार भी होता है. अनुवादक.

(प्रश्न) जिससे ऋग्वेद प्रकट हुआ, जिससे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, सामवेद जिस के बालों के समान है, वह किस प्रकार का है ? हे ऋषे उसका वर्णन करो.

(उत्तर) हे जिज्ञासु, उसे समझो वह (इस संसार का) स्कम्भ अर्थात् आधारभूत है।

भारत के अन्धकारमय युग की रूढ़ियों और सम्प्रदायोंने इस 'ज्ञान' का गला घोट दिया. दयानन्दने कहा 'इन रूढ़ियों और रीतियों को छोड़ो' एमर्सन ने ठीक कहा है कि—'उसे जो सच्चा मनुष्य बनना चाहता है रूढ़ियों का दास न होना चाहिये' और इस अर्थ में दयानन्द सच्चा मनुष्य था. उस ने पुरोहित प्रथा के विरुद्ध ज़ोरदार आवाज़ उठायी। उस ने अपने देशवासियों से कहा कि पिछले अन्धकारमय युग के अन्धविश्वासों से हट कर उस प्रकाश की ओर आओ जिस की इतिहास के प्रभात में वैदिक ऋषियों ने पूजा की थी!

बारम्बार पुरानी धर्मपुस्तकों में यह भाव आता है कि ईश्वर एक है. वह हमारा पिता है. वही मनुष्य का बल और उसी से राष्ट्रों की चिकित्सा होगी।

> हम उसे अपनी सहायता के लिये पुकारते हैं जो सर्वोच्च राजा है, जङ्गम स्थावर सबका स्वामी है और हमारी आत्मा का प्रेरक है।

प्रारम्भ में प्रकाश का स्रोत, वह परमात्मा ही था. वही एक सब जगत् का स्वामी था. वह पृथ्वी और

आकाश को थामे हुये है। उसे हम भक्ति का उपहार अर्पण करते हैं।

वह जो अपनी महिमा से उस सबका, जो चलता है, श्वाश लेता है, अथवा सोता है; एक सर्वोपरि राजा है. वह जो सब द्विपाद और चतुष्पाद् प्राणियों का शासक है. उसे हम भक्ति का उपहार अर्पण करते हैं।

जिस की महिमा को बरफ़ से ढके पहाड़ पुकार रहे हैं और जिस के गौरव को समुद्र और नदियें घोषित कर रही हैं। यह विस्तृत प्रदेश जिस की भुजाओं के समान है. उसे हम भक्ति का उपहार अर्पण करते हैं।

वह जिस ने आकाश को स्थित किया है. वह जो आकाश में स्थित लोकों में व्याप्त है। उसे हम भक्ति का उपहार अर्पण करते हैं।

वह नित्यों में नित्य है सब चेतनों में अत्यन्त चेतन है। जो एक बहुतों की कामनाओं को पूरा करता है। बुद्धिमान् जो उसे अपनी अन्तरात्मा में देखते हैं— उन्हीं को अनन्त शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं।

मैं नहीं समझता कि सारे संसार के साहित्य में कहीं ऐसे वाक्य मिल सकते हैं जो इस से अधिक उच्च प्रोत्साहन देने वाले हों. तत्त्व के समझने में अधिक गम्भीर और गहन हों, आध्यात्मिक महत्व में अधिक आश्चर्यजनक हों.

दयानन्द ने वेदों की बुद्धि का समर्थन करके भारत की बहुत बड़ी सेवा की है. उसने वेदों को आर्य जाति की प्राचीन धर्मपुस्तक समझ कर उनकी पूजा की. मेरी समझ में यह शक्तियुक्त धर्मग्रन्थ हैं न कि प्रोफेसर मैक्समूलर के कथनानुसार बाल्यकाल में वर्त्तमान जाति की विलबिलाहट, वैदिक ऋषियों को बहुत से पाश्चात्य समालोचकों ने दीन, निर्बल, और अंधेरे में टटोलने वाले अज्ञानी बतलाया है. मेरा ठीक ठीक उलटा विचार हैं. वे 'प्रकाश के पुत्र' थे जिन्हें 'अदृष्टपिता' की नैसर्गिक भावना थी. अर्वाचीन युग को भी यदि वह समस्याओं को हल करना चाहता है तो यह नैसर्गिक प्रतिभा प्राप्त करनी चाहिये. वह जीवन जिस का आत्मा से सम्पर्क नहीं है अपने को फलिभूत नहीं कर सकता. अर्वाचीन युग की असफलता का एक बड़ा कारण यह भी है कि वह उन बातोंमें जो क्षणिक हैं डूबाहुआहै और जो'सब में एक आत्मा' है उसे भुला चुका है.

यह एकता का आदर्श ही वेदों का और आर्यवर्त्त के अकुल की सभ्यता का सन्देश है जो कि सुसम्पन्न सुपरिस्कृत आर्यावर्त्त की सभ्यता के रूप में परिणत हुआ. इस आदर्श का प्रोत्साहन बहुत सी दूसरी जातियों तक भी पहुंचा. एक रूस के विद्वान् कौण्ट बिजोस्टोना (Bijoustyeina) ने लिखा थाः—"भारतवर्ष को केवल ब्राह्मण धर्म के उत्पत्ति स्थान होने की ही बधाई न देनी चाहिये प्रत्युत वहीं उस उच्च सभ्यता का भी जन्म हुआ जिसने एशिआेपिया।

इजिप्ट, 'फोनेशिया' 'श्याम' 'चीन' और 'जापान' में भी जो जो उसके सम्पर्क में आये अपना प्रभाव फैलाया और एक नये जीवन को उन २ देशों में भर दिया. यहां तक कि सुदूरवर्ती द्वीप, सीलोन, जावा, सुमात्रा और तातार जातिके दूरस्थित निवास प्रदेश, चैल्डिया, ग्रीस इटली, जर्मनी, और स्केंडिनेविया भी इस सर्वगामी प्रभाव से बचे हुये न रहे" निस्सन्देह पिछले दस वर्षोंमें यह सिद्धान्त कि पृथ्वी पर कई परस्पर स्वतन्त्र सभ्यताओं का प्रवाह रहे, मिट चुकी है और अब उसकी जगह यह थ्योरी ले रही है कि संसार की भिन्न २ सभ्यतायें एक ही मुख्य सभ्यता से निकली और सब जगह फैली हैं।

वेद का दूसरा नाम श्रुति है जिसका अर्थ है कि:—"जो कुछ सुना गया हो।" मुझे यह भाव प्रतीत होता है कि महान् ऋषियों ने वेदमन्त्रों को सुना था. उन्हों ने जो कुछ सुना था उसी को दूसरों तक पहुंचा दिया। वे वेद मन्त्रो के 'द्रष्टा" (दर्शन करने वाले) हैं स्रष्टा बनाने वाले नहीं। उस महान् जीवन-प्रद शक्ति के कम्पन उन शुद्धात्मा शक्तिशाली ऋषियों तक पहुंचे और तब उन्हों ने 'वेद मन्त्रों' का गान किया। शतपथ में आया है:—"ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद उस महान् सत्ता के निःश्वास के समान हैं" क्या यह मेरा भ्रम होगा कि मैं वेदों के विषय में कहूं कि वे महान् विश्व जीवन के कम्पनरूप शब्द हैं जिन्हें तपस्या करते हुये ऋषियों ने ग्रहण किया. ऋषि दयानन्द की वेद भाष्यभूमिका में एक बड़ी सारगर्भित पंक्ति है। वे लिखते हैं:—' सृष्टि के आरम्भ

में वेद पुस्तक के रूप में प्रकट नहीं हुये थे' क्या यह कहना अयुक्त होगा कि वेद 'ज्ञान' का नाम है जिस के वाहक ऋषिगण थे।

ज्ञान की अभिलाषा एक उच्च प्रेरणा है। मनुष्य जाति के जीवन में यह उत्पादक शक्तियों में से एक है। बिना ज्ञान के सभ्यता की कोई उन्नति नहीं हो सकती———"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः" वास्तविक असुर निस्संदेह अज्ञानी पुरुष ही हैं। सच्चे 'आर्य' को ज्ञान की खोज में प्रयत्न करना चाहिये। भारतवर्ष ने धर्म में ज्ञान के आदर्श को भुला कर बहुत दिन तक दुःख उठाया है भारत अज्ञान और अन्धविश्वास से पीड़ित हो रहा है और हमारे बहुत से मन्दिर नास्तिक पुरुषों को हंसने की टट्टी बन रहे हैं।

ज्ञान क्या है? ज्ञान कर्म अथवा आत्मा की शक्ति है। एक कर्मण्य मस्तिष्क या मन सदा 'जानने को' तत्पर रहेगा। धर्मका कुछ अधिक मूल्य नहीं यदि उसे हम 'ज्ञानका सिद्धान्त' या 'जीवन के विज्ञान' के रूपमें प्रस्तुत न करें केवल प्राकृतिक विज्ञान से काम नहीं चल सकता. डार्विन की खोज का बहुत लाभ है। और समाज विज्ञान का, जिस को अमरीका में 'नया विज्ञान' भी कहा जाता है बहुत लाभ है परन्तु मेरी समझ में आत्मा के विषय में कुछ ज्ञान के बिना न तो प्रकृति का और न समाज का ही ठीक ठाक बोध हो सकता है। भारत के ऋषि हम को 'आत्मा की साइन्स' बतलाते हैं।

मैंने बार २ अपने मनमें एक प्रश्न कियाहै:-प्राचीन भारत आत्मिक और मानसिक शक्ति में क्यों इतना सम्पन्न, तेजस्वी और महान् था ? यहां तक कि ११ वीं सदी में भी जैसा कि महान् मुसलिम अलबरुनी भी स्वीकार करता है कि अरब के लोग (ज्ञान के लिये, विशेषकर गणित के लिये) हिन्दुओं के ऋणी थे . ८वीं शताब्दी में मन्सूर बादशाह के दरबार में संख्याओं का प्रचार करने वाला हिन्दुओं का एक वैज्ञानिक दल था जो भारत से वहाँ गया था। कुछ दिन हुये बर्नर ने सिद्ध किया कि चीन के लोगों ने 'दशमलव की रीति' भारत से ही सीखी। भारतीयों को वैज्ञानिक परीक्षण करने का प्रकार ग्रीस और रोम से बहुत पहिले से ज्ञान था. भारत के गौरव के दिनों में उस का 'ज्ञान' धर्म की भावना से युक्त था. धर्म आध्यात्मिक क्रिया शीलता ही थी। यह 'आत्मशक्ति' थी, बहुत शताब्दियों से यह बात उलट रही है, इस का एक कारण है:—दीनों से सहयोग का अभाव. शिक्षा, ज्ञान, वेद और धर्म पुस्तकों का दरिद्रों को अधिकार नहीं। धानकतन्त्रशासन दोनों, दरिद्रों के सहयोग के बिना नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान के रक्षक ब्राह्मण श्रीमान् बन गये, उन्हों ने दरिद्रों से घृणा की और भारत का पतन हो गया. ऋषि दयानन्द 'विद्या' के प्रेमी थे और 'दीनों' के प्रेमी थे। उसने दीनों से कहा:— 'वेद तुम्हारे लिये भी हैं'

हमें दीनो का आशीर्वाद चाहिये, यह मेरा विश्वास है कि उन के चरणों में भारत को स्वाधीनता मिल सकेगी. आर्यों के गौरव का कारण मेरी समझ में यह था:—ज्ञान आत्म साक्षात्कार और सेवा का मार्ग था, ज्ञान कर्म से पृथक

न था, यह उस जीवनपूर्ण सभ्यता का रहस्य है, भारत में दीनों और दलितों के लिये आश्रमों तथा गुरुकुलों की आवश्यकता है, भारत को युवकों की एक जातीय सेना चाहिये जो दीनों की सेवा में घायल होने को तैयार हो, भारत को उस प्राचीन सन्देश के सुनाने को बहुत से सन्देशवाहकों की आवश्यकता है, जो यह था:—'वह एक है उस में कोई जाति का भेद नहीं' राष्ट्रों और जातियों को इस सन्देश की आवश्यकताहै, आज 'राष्ट्रीयता' के नाम पर घृणा और द्वेष फैल रहे हैं हमें 'मनुष्यता' के शब्दों में सोचने को आवश्यकता है, यजुर्वेद में एक महत्वपूर्ण मन्त्र है:—"जो सब भूतों को अपनी आत्मा में देखता है और सब भूतों में अपनी आत्मा को देखता है, वह किसी से द्वेष नहीं करता।" पीड़ित और त्रस्त संसार प्रेम और बुद्धि की नयी वर्षा की प्रतीक्षा कर रहा है, इसलिये मैं जाति के युवकों से कहता हूं कि अपने हृदयों में इस प्राचीन सन्देश को धारण करलो कि 'वह एक है उस में कोई जाति का भेद नहीं' सारी जातियें, सारे देश, सब राष्ट्र उसी के हैं, और वही राष्ट्रों की शांति का स्रोत है।
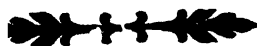
आर्य शिक्षा का तत्व।

भारत व्यग्रचित है, जबतक वह अपने स्वरूप को पुनः प्राप्त न करलेगा उसे शान्ति न होगी. इसलिये गुरुकुलों और आश्रमों की आवश्यकता है. उन में प्राचीन भारत का रहस्य छिपाहुआ है. उन से फिर वह ज्योति प्रकट होगी जिस को जाति को आवश्यकता है. वैदिक मन्त्र में कितना सुन्दर प्रोत्साहन है:— 'हमारी स्वाधीन मातृभूमि ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो'! जातीय पुनरुज्जीवन के लिये शिक्षा आवश्यक है, गीता कहती है "ज्ञान के सदृश कोई वस्तु पवित्र करने वाली नहीं है" अर्वाचीन भारत भोजन से पीड़ित है और यहां लाखों करोड़ों अपढ़ हैं. केवल आधी शताब्दी हुई कि जापान में घोर अज्ञानान्धकार था. परन्तु मेकाडा ने एक राजकीय घोषणापत्र निकाला जिस के अनुसार ग्रामों में स्कूल खोले गये और प्रत्येक जापानी बालक शिक्षा पानेलगा. किसी समय भारत में भी प्रत्येक ग्राम में स्कूल थे. अकबर ने आर्यपरम्परा का पालन करते हुये बहुत से स्कूल और कालेज खोले थे. डाक्टर मथाई अपनी पुस्तक 'Village Administration in British India' में कहते हैं कि उस समय भी जब अंगरेज़ों ने इस देश का शासन प्राप्त किया 'यहां पर जातीय शिक्षा प्रणाली का बहुत व्यापक प्रचार था' आर्य आदर्श के अनुसार जैसा कि मनु ने लिखा है प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये. यह कहना भूल है कि शूद्र और स्त्रियों को

उस समय शिक्षा न होती थी . मनु महाराज कहते हैं:— 'शूद्रेषु मति दद्यात्' अर्थात् शूद्रों को भी शिक्षा मिलनी चाहिये, ऋषि दयानन्द ठीक कहते हैं:— 'सब मनुष्यों और स्त्रियों को पढने का अधिकार है क्या ईश्वर शूद्रों की भलाई नहीं चाहता' वे लिखते हैं "प्राचीन भारत में स्त्रियों की रत्न भूत गार्गी तथा दूसरी स्त्रियें उच्च शिक्षा पाई हुई और वेदों की पूर्ण पण्डिता थीं" ।

आर्य भारत में वर्ण, जाति, या लिङ्ग भेद से किसी के लिये 'विद्या' का मार्ग बन्द न था. विद्या प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है. शूद्रों के सहित सब वर्ग वेदों और वेदों के पाठ से लाभ उठा सकते थे. स्त्रियों के लिये भी विद्या का निषेध न था. कोई २ स्त्रियें विद्या और बुद्धि में बहुत उच्च हो चुकी थीं. हम एक ब्राह्मणी कुमारी के विषय में पढ़ते हैं जिसने अपना सारा जीवन कुरुक्षेत्र आश्रम में विद्या प्राप्ति के लिये अर्पण कर दिया था. एक दूसरी कन्या-राजकुमारी-के विषय में पढ़ते हैं कि उसने अपने पिता का राजमहल छोड़ दिया और स्वेच्छापूर्वक दरिद्रताका व्रत ग्रहण किया और एक ब्रह्मचर्याश्रम में निवास करने लगी जहां कि वह 'तपस्विद्धा बन गयी. राजा भोजके दरबार में बहुत से प्रतिभाशाली कवि थे. इनमें एक देवी भी थी, और उसकी कुछ कवितायें कालि-दास से भी बढ़कर हैं. उसी दरबार में कुछ निर्धन स्त्रियें आयीं जिन्हें उनके पाण्डित्य के लिये पारितोषिक मिला. शिक्षा सम्बन्धी पतन होने से पूर्व सार्वजनिक शिक्षा भारत में फैली हुई थी और परिब्राजक उपदेशक ग्राम २ में घूमते हुये

भारतीय वीरों की कहानियें सुनाकर आध्यात्मिक जीवन के सन्देश का प्रचार करते थे. ऋग्वेद के भाष्य में एक जगह ऋषि दयानन्द शिक्षित मनुष्यों को कहते हैं:—कि चाहे स्कूल में होओ अथवा स्थान २ पर घूम रहे होओ विद्या को अज्ञानियों तक पहुंचाओ'. वे कहते हैं "जब सब श्रेणियों के मनुष्य सुशिक्षित होंगे तो कोई भी झूठो, कपटपूर्ण अधार्मिक रीतियों को न चला सकेगा" अज्ञान के वायुमण्डल में अन्ध विश्वास बढ़ता है. यह बात आश्चर्य की है कि बेकन ने सर्व-साधारण के लिये शिक्षा का विरोध किया था. ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने ऐसी नीति बरती जिस से हमारी ग्रामीण पाठ-शायें नष्ट हो गयीं. बेकनकी युक्ति स्पष्ट थी. शिक्षासे जनता कण्टकरूप हो जायगी. शिक्षा अशान्ति की उत्पादिका होगी. प्राचीन आर्य के लिये शिक्षा एक आध्यात्मिक साधन थी. शिक्षा की पाठ्यप्रणालीमें बहुत से विषय सम्मिलित थे, नारद अपनी शिक्षा के विषयमें कहते हैं:—

> "ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, व्याकरण कल्प (यज्ञ प्रक्रिया) गणित, भौतिक विज्ञान, समयविद्या, न्याय, राजनीति, वाक्यविद्या, वेदों से सम्बद्ध विज्ञान, भूत विद्या, धनुर्विद्या, नक्षत्र विद्या, सर्पविद्या, ललित कलायें सब मैंने पढ़ी हैं".

विश्वविद्यालय को मन्दिर के समान पवित्र समझा जाता था राजा राष्ट्र का लौकिक मुखिया था यदि वह किसी विश्व-विद्यालय की दीक्षान्त संस्कार (Convocation) में सम्मि-लित होता था तो वह यह आशा न करता था कि सब

अध्यापक वर्ग उसे खड़े होकर प्रणाम करेंगे. परन्तु जब आचार्य का प्रवेश होता था तब सब खड़े हो कर उसकी वन्दना करते थे. वह शिक्षा के मन्दिर का अधिष्ठाता (शासक) समझा जाता था।

प्रत्येक गुरुकुल या आश्रम की शिक्षामें मेरे विचार में इन बातों पर ज़ोर देना चाहिये:—

(i) प्रकृति के साथ सहयोग.

(ii) जातीय अनुभव का अङ्गीकरण (assimilation)

(iii) मनुष्य समाज को लक्ष्य में रख कर आर्यावर्त्त की सेवा करने के उद्देश्य से संयम.

जातीय अनुभव! क्या ही अच्छा हो यदि भारतीय विद्यार्थी उस महान् उत्तराधिकार का, जो उन्हें पूर्वजों से प्राप्त हुआ है, महत्त्व समझ सकें! साहित्य, कला, दर्शन शास्त्र, धर्म, और कार्य क्षेत्र में भारत ने कैसे कैसे महान् मस्तिष्क उत्पन्न किये हैं! शताब्दियों तक भारतवर्ष बहुत सी जातियों के लिये मानसिक और आध्यात्मिक प्रकाश का केन्द्र रहा है· ऐंगलो इण्डियन् समालोचक प्राचीन भारतीय शिक्षा और भारतीय संस्कृति के आदर्शों के पुनरुज्जीवन के विचार को 'मूर्खतापूर्ण प्रति क्रिया' कह कर टाल देते हैं. मैं इस पुनरुज्जीवन का समर्थन करता हूं क्योंकि मैं विश्वास रखता हूं कि भारतीय संस्कृति को अर्वाचीन जीवन के लिये एक सन्देश देना है. मुझे शोक यह है कि बहुत से भारतीय युवक

आर्य संस्कृति से उतने ही अपरिचित हैं जितने कि इस देश के ऐंगलो इण्डियन् शासक जिन के विषय में एक सहानुभूति पूर्ण अंगरेज़ ने कहा था कि 'वे हमें इस बात का विश्वास दिलाने का यत्न करेंगे किसी प्रतिभाशाली उच्चात्मा आर्य का होना मिथ्या बात है अथवा आर्यों के उच्च कारनामों के इतिहास को इस बात से न्यून करेंगे कि 'शक्ति ही सच्चाई है' और स्वच्छन्द सैनिक शासन सब प्रकार की शासनपद्धतियों से उत्तम है. जातीय आत्मा आज चिंगारी मात्र है. एक समय वह ज्वाला थी. उसको किस ने बढ़ाया था? वह वस्तु राजनीति से अधिक गम्भीर थी. क्या मैं उसे जीवन-आत्मिक जीवन नहीं कह सकता? शिक्षा का मूल जीवन में है. गुरुकुलों और आश्रमों में जीवन पर बल दिया जाता था. उस का तात्पर्य प्रकृति में जीवन के साथ सहयोग, इतिहास में महान् जीवनों के साथ सहयोग, शिक्षकों और गुरुओं के साथ — पवित्र आचार वाले प्रतिभाशाली बुद्धिमान मनुष्यों के साथ सहयोग करना है. विद्यार्थी प्रकृति, महान् गुरुओं और परम्परागत विचारों के फलदायक सम्पर्क में रहते थे.

आश्रम आजकल के स्कूल कालेजों की तरह भीडदार स्थानों में न होते थे. आश्रम भीड़ से बहुत दूर सुन्दर स्थानों में होते थे और प्रकृति के प्रभाव के गौरव से युक्त थे. गुरु और ब्रह्मचारी गौ को, हरिणको और पक्षियों को प्रेम करते थे और उन के विश्वास को पा लेते थे. विद्यार्थी पेड़ों के नीचे बैठ कर पढ़ते थे और ध्यान करते थे. क्या प्रत्येक वृक्ष 'शान्ति' 'शान्ति' के सन्देश को नहीं पुकारता है? और प्रकृतिके साथ रहने से हमारे अन्दर एक वस्तु—प्रकृति की शान्ति उसकी

गम्भीर पवित्रता चली जाती है. दयानन्द को प्राचीन परम्परा के अनुसार कहते हैं :—"विद्यालय किसी नगर या ग्राम से ५ मील से कम दूर न होना चाहिये. आज कलके नागरिक विश्व विद्यालय योग्य व्यापारी मनुष्यों को उत्पन्न कर सकते हैं परन्तु ऋषियों और कलाप्रवीण (Artists) पुरुषों को नहीं बना सकते. खुली वायुमें स्कूल रखने का नया परीक्षण प्राचीन आश्रम के ही विचार का आँशिक पुनरुज्जीवनहै. सुनते हैं कि ब्रिटिश कोलम्बिया के किनारे के पास हार्डी नामक टापू में एक मनुष्य रहता है जिसने पशुओं के साथ प्रेम कर के अपने वासगृह को उन का पवित्र निवासस्थान बना लिया है जहां वे उस के साथ मित्रभाव से रहते हैं. आर्यावर्त्त में प्रत्येक गुरुकुल प्रत्येक आश्रम ऐसा ही पवित्र स्थान था। गुरु और उनके शिष्य छोटे २ प्राणियों के बड़े रक्षक थे. क्या वे हमारे भाई नहीं हैं ? आर्यशिक्षक को एक उच्च आदर्श प्रेरित करता था. वह अपने शिष्य से कहता था:—मैं तुझे आकाश और पृथ्वीको सौंपता हूं. मैं सब भूतों को सौंपता हूं, शिक्षाका अर्थ विश्व के प्रति समर्पण कर देना ही है. यदि हम एक बार केवल अनुभव करें कि हमारा जीवन आकाश और पृथ्वी को तथा सब प्राणियों का–पशुओं और पक्षियों को जो कि पृथ्वी माता के पुत्र हैं–अर्पन है तो हम अपने नगरों के बड़े अन्याय पशुवध को एक साथ बन्द कर दें. विद्या मनुष्य को प्रकृति का विरोधी बनाने के लिये नहीं है प्रत्युत उसके अन्दर विश्व के साथ बन्धुता, एकता, और सहयोग के भाव उत्पन्न कराने के लिये हैं।

दुःख की बात है कि आधुनिक भारतीय विद्यार्थी भारत के आदर्श और संस्कृति के विषय में इतना थोड़ा जानता है. फिर भी उनका भूतकाल में बड़ा प्रभाव हुआ है और आज भी नयी सभ्यता, और नयी मनुष्यता के निर्माण में उनका बहुत मूल्य है. एक फ्रेञ्च विद्वान् विक्टर गोलोनब्लफ़ ने (Victor Golon bleff) कुछ समय हुआ कि लण्डन में व्याख्यान देते हुये कहा कि 'भारतीय कला' का कितना बड़ा प्रभाव पड़ा है. उसने कहा कि महान् भारतीय कला पूर्वीय एशिया में इसी तरह फैली जैसे कि बहुत से परिवर्त्तनशील आदर्शों ने मेडिटरेनियन समुद्र के देशों को प्रोत्साहित किया और आलप्स से आगे तक फैल गये. भारत के आदर्शों ने बौद्धधर्म का रूप धारण कर के जापान के जीवनको प्रभावित किया और बदल डाला. भारत के विद्यार्थी को केवल यह आवश्यक्ता है कि वह भारत के भूतकाल के महत्व को अनुभव करना सीखे, मैकाले ने आर्यावर्त्त की महान् संस्कृति को समझे बिना ही अंग्रेज़ी शिक्षा पर ज़ोर दिया था.

हमारे ऐतिहासिक काव्य, हमारे शास्त्र, हमारी भ्रमण करती हुयी कविता; जिसे वे चारण अब भी गाते हैं, जिन में से बहुतों को पर्याप्त भोजन भी नहीं मिलता और जो चिथड़ों में लिपटे हुये हैं; ये सब हमारे इतिहास की वीरताके अत्यन्त द्योतक हैं भारतीय साधु बनने का ही लक्ष्य न रखते थे और न क्लर्क बनने का, जैसा कि आजकल बहुधा पाया जाता है, अपितु पूर्ण शरीर युक्त 'मनुष्य' बनने का, आर्यभारत में विद्यार्थी कमज़ोर और पीले पड़े हुये न होते थे. उन्हें शरीर

का ध्यान रखना सिखलाया जाता था और वह गुण जिस पर प्राचीन अध्यापन में जोर दिया गया था, जैसा कि मनु महाराज बतलाते हैं—'वीरता' था, पुरोहित और उपदेशक तथा परिव्राजक शिक्षक ग्रामों में महाभारत और रामायण सुनाते थे तथा जनता के मन पर 'पराक्रम' के महत्त्व का प्रभाव डालते थे. रामायण में श्रीराम के पराक्रम और वीरता को प्रकट करने वाले प्रोत्साहपूर्ण गीत हैं, वर्त्तमान भारत में बहुत से लोगों को पता नहीं है कि अभिनन्द का हिन्दू प्रकार राम २ कहना सारी जाति का एक वीर के लिये प्रशंसा का उपहार देना है. एक प्राचीन गीत में जिस का पाठ करके प्राचीन भारत में गुरु और शिष्य पढ़ना प्रारम्भ करते थे कहा गया है:—"हमारे अन्दर 'शक्ति' और 'सत्य' की वृद्धि हो !"

आजकल की अधिकाँश शिक्षा 'कुशिक्षा' है. इसके द्वारा कायर और गुलाम उत्पन्न हुये हैं. नये सिरे से 'पुनःशिक्षा' की आवश्यकता है. आजकल की शिक्षा से अधिक से अधिक कुछ इधर उधर का थोड़ा 'साधारण परिचय' प्राप्त होता है पर 'साधारण परिचय' का नाम ही शिक्षा नहीं है. सदाचार का निर्माण वीरता से होता है, सरकारी स्कूल विद्यार्थियों को सीधेसादे राजभक्त बनाने का यत्न करते हैं. वे वीर और साहसी नहीं बनाते, विश्व-विद्यालयों से क्लर्क, अर्द्धबुभुक्षित अध्यापक और धन कमाने वाले वकील तथा कुछ शिल्प विशेषज्ञ भी निकलते हैं परन्तु यूनिवर्सिटियें 'मनुष्य' उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं करतीं।

मेरी समझ में भारतीय स्कूलों में भारतवर्ष के इतिहास में निरी सूखी तारीखें और तालिकायें (Tables) न पढ़ाये जाने चाहियें किन्तु इतिहास एक धर्म ग्रन्थ की तरह हो जिस से वे जीवन का सन्देश और कर्म का सन्देश प्राप्त कर सकें, मैं चाहता हूं कि प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी भारत को बनाने वाले महान् पुरुषों के विषय में गीतों और कथाओं को पढ़ें, मैं चाहता हूं कि वे रामायण और महाभारत पढ़ें, तथा सिक्ख मरहटा, राजपूत और मुसलमानों के अपने अपने गौरवयुक्त समय के वीरतापूर्ण कार्यों का इतिहास पढ़ें, मैं चाहता हूं कि प्रत्येक स्कूल में शारीरिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जावे जिस से कि भारतीय बालक और बालिकाओं में साहस, सामर्थ्य, और खेलने की शक्ति बढ़ जावे, उस युवक को जो जाति की सेवा करना चाहता है, वीरता, मनुष्योचित गुणों को, निर्भयता युक्त सदाचार और जीवन शक्तिपूर्ण आदर्शवाद को अपने अन्दर अवश्य बढ़ाना चाहिये।

प्राचीन आर्यावर्त्त में गुरु पवित्र भाव, पवित्र विचार और पवित्र आदर्श रखने वाला होता था. वह कोई फ़ीस न लेता था—विद्या और दरिद्रता परस्पर मिले हुये थे—त्याग सब से बड़ी सम्पत्ति थी, ऐसे अध्यापकों के जो जितने ज्ञानी थे उतने ही पवित्र आत्मा भी थे—चरण कमलों में भेट प्रस्तुत करने से देश के उच्चतम कोटि के लोग भी अपना विशेष गौरव समझते थे, अथर्ववेद के एक मन्त्र में हम पढ़ते हैं कि एक बार सूर्य ब्रह्मचारी बनता है और अपने गुरु के निकट समिधा और भिक्षा लेकर जाता है कैसी प्रोत्साहन देने वाली कल्पना है कि सूर्य गुरु के पास भेट लेकर जाय।

आर्य ब्रह्मचारी के चरित्र गठन करने वाली शक्तियांये थीं.

(१) सहानुभूति

(२) सूर्य का प्रकाश

(३) आत्मिक ध्यान

विद्यालय एक कुल होता था अर्थात् गुरुकुल जहां पर गुरु और गुरु पत्नी शिष्य पर अपने पारिवारिक प्रेम की वर्षा करते थे—आश्रम गुरु और विद्यार्थियों के परिवार थे जो कि आर्य आदर्श की सेवा की तैयारी करतेथे, गुरु को शास्त्र आज्ञा थी कि अपने शिष्य को पुत्र को तरह प्रेम करें-शारीरिक दण्ड का निषेध था विद्यार्थी सहानुभूति और प्रेम के वायुमण्डल में विचरते थे—मनुजी लिखतेहैं कि अध्यापक को ऐसी वाणी कभी न बोलनी चाहिये कि जिससे दूसरों को डर मालूम पड़े हिन्दूसमाज के पतन का एक बहुत बड़ा कारण स्कूल और कालिज में अध्यापकों के अन्दर प्रम का न होना भी है।

सूर्य के प्रकाश में प्राणायाम करने से ब्रह्मचारियोंका स्वास्थ बनता था, ध्यान और प्रार्थना अन्तःकरण के आभ्न-रिक प्रवाहों के साथ मिलकर ब्रह्मचारी के मन में जीवन के आदर्श के महत्व में श्रद्धा की स्फूर्ति करते थे।

इसका आधार ब्रह्मचर्य था. ब्रह्मचर्य से सादगी, पवित्रता और आत्म संयम प्राप्त होता था, एक विद्यार्थी जब तक कि वह अध्ययन करता था, विवाह नहीं कर सकता था—ऋषि दयानन्द आर्य आदर्श के अनुसार विद्यार्थियों के विषय में लिखते हैं-" वे चाहे राजकुमार और राजकुमारियें हों;

चाहे भिखारीकी सन्तान, प्रत्येक को जितेन्द्रियताका अभ्यास करना चाहिये" आज कल राजकुमार बिलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं और उन्हें बहुत थोड़ी विद्या तथा शक्ति प्राप्त होती है, सरस्वती और शक्ति 'भोग' के साथ नहीं रहती, महाभारतमें आयाहै कि "इन्द्रिय सुख चाहने वाले को विद्या प्राप्ति छोड़देनी चाहिये और विद्या प्राप्ति चाहने वाले को शारीरिक सुख छोड़ देने चाहियें" आज हम बालकों को पति बना देखते हैं जोकि निर्बल और जीवन संग्राम के लिये अयोग्य हैं, बाल विवाह के कारण हमारे समाज की शक्ति नष्ट हो गई है. और विद्यार्थी ब्रह्मचर्य त्याग कर भोग जीवन व्यतीत करते हुये परीक्षायें पास कर लेते हैं परन्तु न तो उन्हें विद्या प्राप्त होती है और न आत्म सम्मान क्योंकि दोनों के लिये ही आत्मसंयम की आवश्यकता है. आर्यावर्त्त में ब्रह्मचर्य का बहुत मूल्य समझा जाता था. एक धर्म ग्रन्थ में हम पढ़ते हैं "ब्रह्मचर्यं परम तीर्थम्" अर्थात् ब्रह्मचर्य सब से श्रेष्ठ तीर्थ है।

आश्रम या गुरुकुल में प्रवेश के पूर्व ब्रह्मचारी का एक सुन्दर संस्कार होता था. यजुर्वेदके एक सुन्दर मन्त्रमें इसका उल्लेख आता है:—

"इस ब्रह्मचारीको जिसने माला धारण कर रक्खी है और जो तुम्हारे पास विद्याकी भिक्षाके लिये उपस्थित है अपना शिष्य बनाना स्वीकार करो"।

ब्रह्मचारी पवित्रता, दरिद्रता और सेवा का त्रिगुण व्रत धारण करता था उसे बहुत सवेरे "रात्रि के चौथे पहर" में

उठना आवश्यक था प्रातःकाल सन्ध्या करना उसका धर्म था. उसके लिये आवश्यक था कि स्वादिष्ट और नशे की वस्तुओं को उपयोग न करे, उसको अपने जीवन में विद्या और जितेन्द्रि-यता का मेल करना चाहिये उसको कोमल विस्तर पर न सोना चाहिये और कर्मशील होना चाहिये. उसे वेदों का अध्ययन करना आवश्यक है. उसे गुरु की आज्ञा माननी आवश्यक है, सिवाय उस दशा के जब कि वे धर्म से विचलित होने को कहें, वेद ठीक ही कहते हैं कि "ब्रह्मचर्य से ऋषियों ने मृत्यु को जीता था"।

विद्या जीवन से प्रथक नहीं, जीवन, कर्म और सेवा से ज्ञानकी वृद्धि होती है. आजकल बहुत कुछ जिसे ज्ञान समझा जाता है केवल अभिमान मात्र है उसके अन्दर वह नम्रता नहीं जो जीवन के साथ सहयोग और प्रेम पूर्ण सेवा से प्राप्त होती है, सेवा के सुन्दर भाव के विषय में हम बहुत सी कहानियें पढ़ते हैं जिन से विद्यार्थी का व्यवहार गुरु के प्रति श्रद्धापूर्ण होता था. विद्यार्थी गुरु के लिये भिक्षा एकत्र करता था. विद्यार्थी गुरु के घर पर काम करते थे, उनके पशु चराते थे, जङ्गल से ईंधन लाते थे और दूसरी छोटी बड़ी सेवायें करते थे. आरूणी के विषय में हम पढते हैं कि उसको खेतकी मेंड को, जहां कि पानी ने काट दिया था, रोकने की आज्ञा हुई, उसने सब उपायोंको व्यर्थ समझकर स्वयं अपना शरीर पानी रोकने के लिये लगा दिया, उपमन्यु के विषय में हम पढ़ते हैं कि वह गुरु के पशु चराता था और उसके खेतों की देखभाल करताथा, कच के विषयमें हम पढ़ते हैं कि वह ईंधन ले जाता

था और अपने गुरु की गऊ चराता था, रामायण के पृष्ठों से पता चल सकता है कि श्रीराम कितनी निष्ठा से अपने गुरु वशिष्ठ की सेवा करते थे, और श्रीकृष्ण ने गुरुभक्ति का कैसा सुन्दर दृष्टान्त उपस्थित किया है अपने गुरू संदीपन के लिये श्रीकृष्ण जङ्गल से ईंधन और नदी से पानी लाते थे तथा भोजन भी बनाते थे।

संसार के इतिहास में आर्यों का सत्य के लिये अद्भुत प्रेम है आधुनिक जीवन के मुख्य उद्देश्य धन और शक्ति हैं आर्यावर्त का मुख्य प्रोत्साहन विद्या या ज्ञान के लिये था आर्य विद्यार्थी ज्ञान के लिये उत्कट प्रेम रखता था, मैगस्थनीज़ जो कि तीसरी ईसा से पूर्व की शताब्दी का यूनानी भारत यात्री था लिखता है कि उस समय भारत में कुछ ऐसे विद्यार्थी थे कि जो ३७ वर्ष तक अध्ययन करते थे श्वेतकेतु ने १२ वर्ष तक आत्मविद्या (आत्मिक ज्ञान) का अध्ययन किया था, भारद्वाज ने क्रमशः तीन जन्म वेदों के अध्ययन में बिताये और जब इन्द्र ने पूछा कि वह चौथे जन्म में क्या करेगा तो उत्तर दिया कि "फिर वेदों का अध्ययन."

ज्ञान का उद्देश्य क्या है ? केवल अध्ययन नहीं विद्वत्ता नहीं किन्तु आत्म समर्पण जब एक ब्रह्मचारी गुरु के पास शिष्य बनने जाता था उस के हाथ में समिधा होती थी, समिधा समर्पण की अग्नि का चिन्ह है और निस्सन्देह विद्या को आत्मसमर्पण का उद्देश्य पूरा करना चाहिये, बारम्बार यह आदेश किया गया है कि अध्यापक को यज्ञ विद्या अर्थात् समर्पण विद्या अवश्य पढ़ानी चाहिये, आजकल जिसे विद्या कहते हैं उसका बहुत अंश केवल व्यक्तिगत आकांक्षा और स्वार्थों के भावों को बढ़ाता है इसका नाम चतुरता है, हमारे

विद्यार्थियों को स्कूल और कालिजों में बतलाया जाता है कि विद्या ताकत है, परन्तु प्राचीन आश्रमों में एक गहरी सच्चाई बतलाई जाती थी कि 'विद्या समर्पण रूप है' ।

अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने का मुख्य नियम आत्म समर्पण है और जब भारत के विद्यार्थी और युवकों के हृदय में विद्या आत्म समर्पण के रूप में प्रकट होगी तब इतिहास में नया प्रभात होगा और वह दिन भारत की स्वाधीनता का दिन होगा, आर्य आश्रम विद्या के सच्चे केन्द्र थे. उन में कोई संकुचित सिद्धान्त या सम्प्रदाय नहीं सिखाया जाता था, वे यथार्थ जीवन से प्रथक केवल रुढ़ि अध्ययन को प्रोत्साहित न करते थे वे बतलाते थे कि ऐन्द्रियिक भोगों के पीछे जाना सच्चे सुख की हत्या करना है, वे जीवन का ऐसा पाठ पढ़ाते थे जिस में सरलता और आध्यात्मिकता दोनों सम्मिलित थीं वे आश्रम आत्म संयम के घर थे और विद्यार्थी तपस्या के, न कि भोग के वायु मण्डल में विचरते थे जिस समय सिकन्दर भारत में आया यूनानी लोग तक्ष शिला के आश्रमों के गुरुओं की आध्यात्मिक सरलता और शक्ति पर आश्चर्यान्वित हो गये भारत में उस समय बनारस, नलिन्दा, मथुरा, द्वारका पुरी, और नदिया यह प्रसिद्ध २ आश्रम (गुरुकुल) थे।

इन गुरुकुलों और आश्रमों में एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होती थी जिससे आर्यावर्त संस्कृति पूर्ण सभ्यता के निर्माणमें समर्थ हुआ जिस सभ्यता से बढ़कर मेरे विश्वास में सँसारके इतिहास में कोई दूसरी नहीं है . और आज भारत को फिर आश्रमों (गुरुकुलों) की आवश्यकता है जिनसे युवक आधु-

मिक विज्ञान और आर्य संस्कृति दोनों से युक्त होकर निकलें ऐसे आश्रमों से ही मुझे "नये पुनरुज्जीवन" की आशा है.

आधुनिक जीवन छिन्न भिन्न और विकृत हो रहा है. जिसको आज कल सभ्यता कहते हैं वह अधिकांश में पृथकता ही है. अर्थात् मनुष्य की प्रकृति से पृथकता मनुष्य की मनुष्य से पृथकता और मनुष्य की ईश्वर से पृथकता करने वाली है. हम प्राचीन पुस्तकों में पढ़ते हैं कि मनु ने जाति को रक्षा की नाव बनाकर जलप्लावन (तूफान), से बचाया था और मैं फिर आर्यावर्त्त की आध्यात्मिक संस्कृति के द्वारा जाति की रक्षा होने की प्रतीक्षा कर रहा हूं—देखो एक विचारक, प्रोफेसर जी. हबनर (G. Hubener), क्या कहते हैं:—

" हम नये आदर्श के लिये आधुनिक देशों के और जिनमें आत्मा का घात करने वाला पूंजी सिद्धान्त काम कर रहा है नहीं देखते प्रत्युत यूरोप के मध्यकी ओर और प्राचीन भारत की आध्यात्मिक संस्कृति और रूस के पवित्र कृषक जीवन को ओर देखते हैं।

मैं भारत के परम्परागत आदर्श के पुनर्जीवन का समर्थन करता हूं क्योंकि मुझे उसमें भविष्य की पुकार सुनाई देती है उनमें से एक पुकार को सुनो:—

"सच्चिदानन्द रूपोस्मि नित्य मुक्त स्वभावः"
अर्थात् मैं सत्य चेतन और आनन्द का रूप हूं मैं सदा मुक्तहूं.

इस प्राचीन संगीतमें भारत के युवकों तुम्हारे भविष्यकी पुकार सुनाई देती है. "तुम सदा मुक्त हो" आधुनिक विज्ञान कहता है कि तुम केवल परमाणु हो. ठीक है परन्तु मैं कहूंगा कि अनन्तशक्ति के परमाणु हो तुम में से प्रत्येक "सत्य चेतन, और आनन्द रूप है," प्रत्येक एक शक्तिशाली अणु है प्रत्येक बलवान शक्तियोंका केन्द्र है और अनन्त शक्तिका बिन्दु है. इस विश्वास के साथ मैं उनसे जो युवक हैं कहता हूं कि अपने कार्य के सन्नद्ध हो जाओ. सुवर्ण और संसार के चमकते हुये प्रलोभनों के पीछे मत पड़ो. धन और प्रसिद्धि की लालसा मत करो । दरिद्रता को अपनाओ. और शरीर को धूलि धूसरित होने दो और अपनी उस माता के नाम पर घर बार को छोड़ो जिसके लाखों करोड़ों बच्चे रोटी और स्थान के लिये तड़प रहे हैं. घरबार छोड़कर आदर्श के साक्षी बनो ग्राम २ में घूमो और प्रतीक्षा करते हुये जनसमूह के प्रति इस प्राचीन सत्य संदेश की घोषणा करदोः-

उठो ! जागो !

तुम सदा मुक्त हो ।

आर्य आदर्श का साक्षी।

अभी तक बहुतों ने उसके जीवन और संदेश के महत्व को नहीं समझा है परन्तु मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं जब उसका नाम स्कूल और कालिजों में जाति के युवकों को सिखाया जायेगा.

अर्वाचीन भारत में राममोहनराय के समय से कई महान पुरुषों ने जन्म लिया है, प्रत्येक महान पुरुषमें एक विशेष महत्व पाया जाता है दयानन्द की अपनी विशेषता है. वह विशेष रीति से आर्य आदर्श का साक्षी था।

ऐसे युग में जो बहुत अधिक अंश में सूक्ष्म संदेह वाद के भावों से पूर्ण था दयानन्द ने सत्य में अपने विश्वास की घोषणा की. उसने कहा कि "मनुष्य की आत्मा में सत्य को समझने की शक्ति विद्यमान है. इस सत्य के विश्वास ने उसका अपने पिता के घर से जहां वह विलास और विपुलता का जीवन व्यतीत कर सकता था निर्वासन किया. इस सत्य के विश्वास ने उसे उन रीतियों और सिद्धान्तों का जो उसे सत्य प्रतीत न होते थे स्पष्ट वादी समालोचक बनादिया. ऋषि कुछ समालोचनाओं से मैं नम्रता पूर्वक कहूंगा कि मैं सहमत नहीं हूं और क्या वह स्वयं उन सब से सहमत होते यदि अब भी वे स्थूल शरीर में होते. निस्सन्देह उन्हो ने भ्रान्ति रहित होने का दावा नहीं किया. उनको अत्यन्त उन्नतिशील उत्कृष्ट

बुद्धि थी उन्होंने कोई नया सम्प्रदाय या धर्म खड़ा करने की इच्छा नहीं की वे केवल सत्य के पूजक होना चाहते थे. और सत्य अनन्त है।

कुछ समालोचकों ने दयानन्द को प्रतिक्रिया शील (reactionary) बतलाया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे ऋषि के जीवन और संदेश के रहस्य को नहीं समझते. उसकी वेदों के लिये श्रद्धा अविचार पूर्ण न थी। मेरे लिये प्रकृति भी वेद है मेरा विश्वास है कि दयानन्द ऐसे विचार का स्वागत करते उनका मन उनके शरीर के समान स्वस्थ और बलवान था, क्या उन्होंने नहीं कहा कि सब सृष्टि के नियम और वह सब जो सृष्टि नियमों के अनुकूल है सत्य है, और इस से विपरीत असत्य है "एक योगी के रूप में उनने आध्यात्मिक तत्व के प्रकृतिपरक विवेचन किया। उनका आत्मा में गहरा विश्वास था और इस विश्वास का वे बुद्धि युक्त दार्शनिक तर्कों से मण्डन करते थे। उनकी दृष्टि में यह विश्वास अवैज्ञानिक था। आज जगत प्रसिद्ध वैज्ञानिक एम. कैमिली फ्लैमेरियन (Mcamille Flasmarian) आत्मा का अस्तित्व विज्ञान के नाम में स्वीकार करतेहैं वे अपनी एक फ्रेञ्च पुस्तक जो अभी हाल में प्रकाशित हुई है की भूमिका में हम " अदृश्य के विषय में क्या जानते हैं " कहते हैं।

लगातार अनुभव से स्पष्ट हो गया है कि हमारे अन्दर कोई अज्ञात शक्ति है जिसे अबतक वैज्ञानिक सिद्धान्तों में नियम पूर्वक अस्वीकार किया गया है. और वह वस्तु हमारे भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी और प्राकृतिक

अणुओं जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से अविनाशी हैं के दूसरे रूप में बदल जाने पर भी बनी रहती है. हम इसे कोई नियम, तत्व या चेतन अणु अथवा आत्मा किसी नाम से कहें. इस बातका कोई निषेध नहीं कर सका कि एक अदृष्ट वस्तु अस्तित्व है.

दयानन्द की देश भक्ति का आधार उसका आर्य आदर्श के लिये प्रेम था. उसकी देश भक्ति उन लोगों के समान न थी जो मुख पर भारत को रखते हैं किन्तु अपने भोजन वस्त्र में अपने विचारों में अपने जीवन और रहन सहन में यूरोप के आदर्श रखते हैं. दयानन्द की देश भक्ति उसके जीवन का अङ्ग थी. एक बार अलीगढ़ में जब एक राजपूत नई अंग्रेजी पोशाक में आया तो दयानन्द ने उसे देखकर आश्चर्य और दुःख प्रकट किया. उसने राजपूत से कहा देखो तुम्हारे पिता सादी स्वदेशी पोशाक पहनते हैं फिर भी उनका आदर है. क्या तुम विदेशी ढङ्ग पर विदेशी कपड़ों को पहन कर अधिक आदरनीय बनना चाहते हो दयानन्द की देश भक्ति जाति और सम्प्रदाय की सीमा से आगे थी और उसने अछूतों को भी गले लगाया. उसने बार २ कहा कि ऋषियों की प्राचीन शिक्षा जाति पांति के विरुद्ध है. सब आत्माओं में नित्य समानता है और शूद्र भी एक आत्मा है. जैसा कि बर्न्स ने (Burns) सुन्दरताके साथ कहा है:—

मनुष्य का पद केवल बाहरी छाप है,
परन्तु मनुष्य यथार्थ में मनुष्य ही है।

दयानन्द का विश्वास था कि आर्यावर्त से विद्याधर्म और सभ्यता की लहरें दूर २ तक देशों में गईं कतिपय आधु-

निक समालोचकों ने दयानन्द पर आर्य प्रभाव को बढ़ाकर बतलाने का आक्षेप किया है पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि नवीनतर अनुसंधान दयानन्द की बातों को पुष्ट करता है आज कल विद्वान हमको बतलाते हैं कि वैदिक सभ्यता शनैः शनैः भारत से बाहर के देशों में पहुंची और भारत में अवध और बिहार में जहाँ उसने जैन और बौद्ध धर्म को जन्म दिया अभी हाल में सिंध में हुई पुरातत्व सम्बन्धी खोज इस आशा को बढ़ाती है कि हमें भारतीय संस्कृति की प्राचीनता के नये प्रमाण मिलेंगे।

दयानन्द ने पश्चिम के पौरस्त्य विद्वनों का घोर रूप से विरोध किया जो वेदों में बहुदेववाद (Polytheism) या अनेक प्रधान बहुदेववाद (Henotheism) स्वीकार करते हैं और एकेश्वरवाद (monotheism) को नवीन बतलाते हैं। दयानन्द ने प्राचीन आर्यों के धर्म को एकेश्वरवाद का मानने वाला सिद्ध किया. आज ऐसे विद्वान विद्यमान हैं जो स्वीकार करते हैं कि धार्मिक पूजा का प्रारम्भिक प्रकार एकेश्वरवाद का था।

अर्वाचीन युग शिल्पकला पूर्ण है- मशीन के द्वारा वस्तुयें बहुत अधिक परिमाण में उत्पन्न की जा सकती हैं परन्तु साथ ही वे जीवन को मनुष्यताहीन बनाती हैं। बड़े नगरों को देखो उन में बहुत सी मशीन हैं परन्तु मनुष्य मशीनों के आधीन है। बहुत सी सम्पत्ति है पर इस में दीनों की पीड़ा और आंसू मिले हुये है। वहां मज़दूरों के गन्दे आवास गृह हैं और भयानक दरिद्रता है. मेरी आत्मा कभी २ उत्तेजित होकर कह उठती है कि ये बड़े नगर नरक के द्वार हैं अभी हाल में

वैमबली प्रदर्शनी (Wembley Exihibition) हुई थी. ये पश्चिमी सभ्यता की चित्र रूपी थी और उसके फेल होने का भी नमूना थी. इस सभ्यता को अपनी तोपों का अभीमान है जो कि उसकी नाशक शक्तिका चिन्ह है. ये मैशीन की सभ्यता जैसा कि एक प्रसिद्ध विचारक ने प्रकट किया था कि "शक्ति उलटे स्थान में प्रयोग कराती है" इसी सभ्यता के कारण अभी हाल में राजकोय शक्ति सम्पन्न पूंजा युक्त जातियों में युद्ध हुआ था इस सभ्यता का फल भिन्न २ श्रेणी के लोगों में विरोध सामाजिक क्षय और आर्थिक गुलामी हुआ है इस लिये प्राचीन संदेश की आवश्यकता है। गीता में कहा गया है "जो केवल अपने लिये पकातेहैं वे पाप का भोजन करते हैं. ऋग्ववेद में आता है "वह मनुष्य जो दूसरों का ख्याल किये बिना स्वयं अकेला खाता है वह पाप पर पाप इकट्ठो कर रहा है"अर्वाचीन मनुष्य कहता है कि धन कमाओ प्राचीन बुद्धि कहती है कि "उसे ग़रीबों के साथ बाँटा" ।

आर्यों ने हिंसा युक्त सभ्यता को नहीं बनाया था प्रत्युत संस्कृति-युक्त-सभ्यता (Culture Civilization) को मैं जातिके युवकों से सरल जीवन और आत्म त्याग की भावना की अपील करता हूं यजुर्वेद में एक सुन्दर मंत्र आया है जो कहता है "मैंने मातृभूमि का आवाहन किया है और वह मुझे अपने पास बुलायेगी" युवकों! अब एक महान कार्य के लिये एक बड़ी सेवा के लिये भारत का आवाहन करो क्योंकि भारत की और संसार की दशा करुणाजनक है। हम भारत वासी भारत की पुकार का क्या उत्तर देंगे ? भारत ने अपने गौरव के दिनों में तपस्या और एकता के संदेश की पूजा की

थी। और तपस्वी दयानन्द हमारे युग में उस आदर्श का साक्षी था, ऐ युवको! तुम जोकि सेवा के लिये उत्सुक हो किस आदर्श की पूजा करोगे।

एक रात को मुझे स्वप्न आया, मैं इधर उधर घूम रहा था इतने में एक आवाज़ आई, उठो और देखो। मैं एक छोटी नाव पर गया जिस पर मैंने कुछ मनुष्यों को देखा, वे अपने को यात्री बतलाते थे और वे घायल हो रहे थे, मैंने पूछा कि इस सब का रहस्य क्या है? पुकार हुई, प्रतीक्षा करो और देखो शीघ्र ही नाव किनारे लगाओ किनारे पर तेजस्वी आकृतियें खड़ी हुई थीं उन्होंने नाव में बैठे घायल यात्रियों को देखा और हर्ष पूर्ण स्वर में उनका अभिनन्दन करते हुये कहा "धन्य है आदर्श के उपासक को धन्य है. तुम सुन्दर महान् युद्ध मे घायल हुये हो!" अपने जातीय भाग्य इस चिन्तापूर्ण समय में मैं युवकों से कहता हूं:—

भारत में जब वह महान् था तपस्या और एकता के आदर्श की पूजा की थी, आज तुम भी उसी आदर्श की पूजा करो और फिर कर्मक्षेत्र में प्रवेश करो कष्ट ही तुम्हारा पारितोषिक होगा ये होसक्ता है कि तुम घायल हो जाओ जैसे दयानन्द घायल हुआ था और उसे ज़हर दिया गयाथा. परन्तु तुमको यात्रियोंकी नोकामें स्थान मिलेगा. तुम्हें पता लगेगा कि दूसरे किनारे पर ऋषिगण मनुष्य जाति के आध्यात्मिक नेता तुम्हारा हर्ष पूर्ण स्वर अभिनन्दन करने खड़े हुये हैं और कहते हैंतुम—धन्य हो आदर्शके उपहास को तुम धन्य हो जो कि स्वाधीनता के संग्राम में घायल हुये हो!